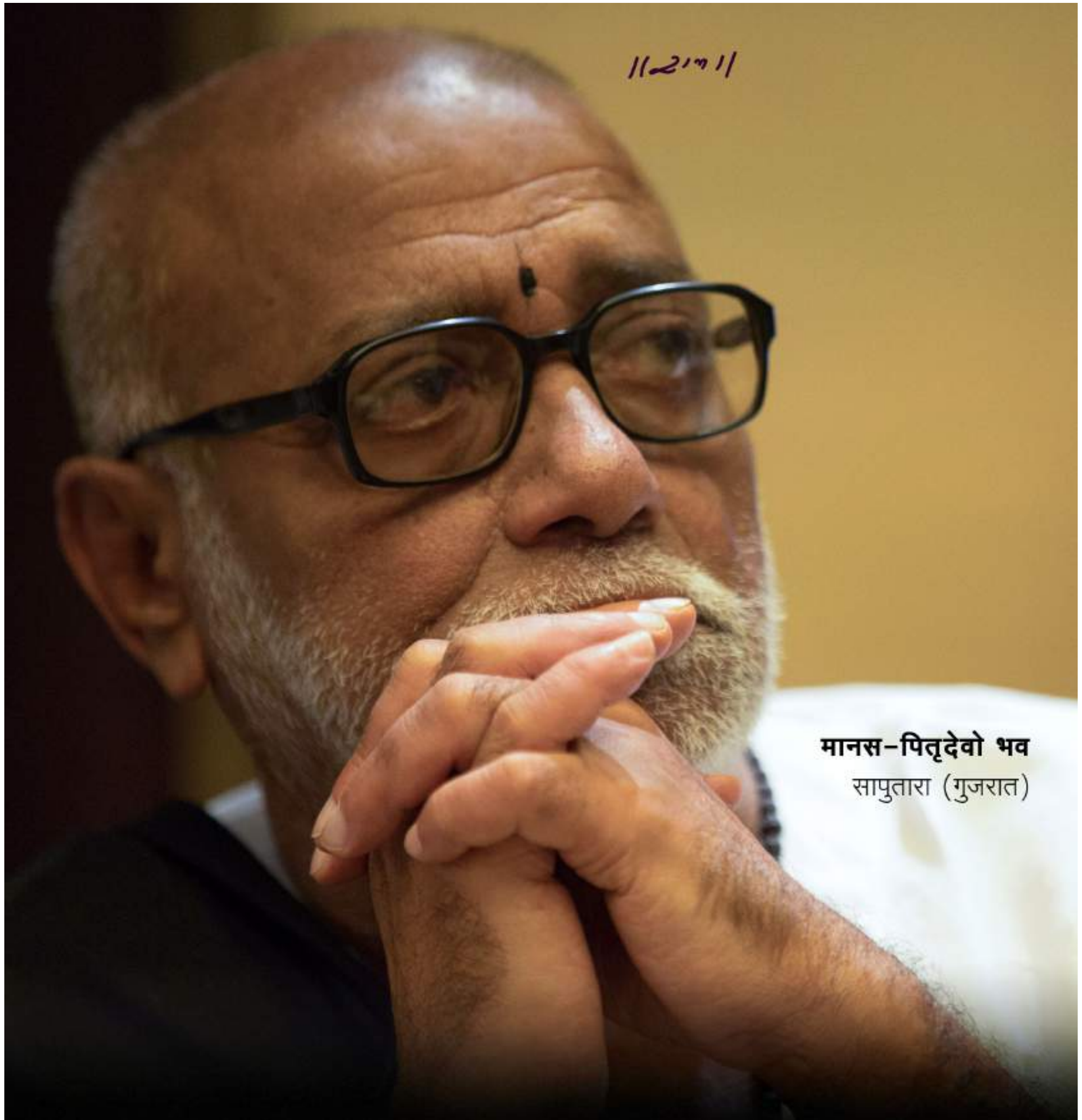

मानस-पितृदेवो भव

सापुतारा (गुजरात)

॥ रामकथा ॥

मोरारि बापू

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥

।। रामकथा ।।

मानस-पितृदेवो भव

मोरारिबापू

सापुतारा (गुजरात)

दिनांक : ९-९-२०१७ से १७-९-२०१७

कथा-क्रमांक : ८१७

प्रकाशन :

नवम्बर, २०२१

प्रकाशक

श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,

तलगाजरडा (गुजरात)

www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट

© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक

नीतिन वडगामा

nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति

सम्पर्क -सूत्र :

ramkathabook@gmail.com

+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स

स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू ने दिनांक ९-९-२०१७ से १७-९-२०१७ के दिनो में सापुतारा (गुजरात) में रामकथा का गान किया। पितृपक्ष-श्राद्धपक्ष में गाई गई यह रामकथा 'मानस-पितृदेवो भव' विषय पर केन्द्रित हुई।

'रामचरितमानस' में कितने-कितने पितृचरण है और किस-किस को पिता कहकर पुकारा गया है इसकी खोज करते हुए बापूने नौ पितृचरण को रेखांकित कर अपना दर्शन प्रकट किया। बापू ने भगवान शिव, भगवान राम, सत्यकेतु, महाराज स्वयंभू मनु, महाराज दशरथजी, महाराज जनक, गीधराज जटायु, अंगद का पिता वालि और दशानन-यह नौ पितृचरण की अपनी-अपनी विशेषताओं का विशद विवरण किया।

बापू ने रजोगुणी, तमोगुणी, सत्त्वगुणी और गुणातीत जैसे चार प्रकार के पिता का परिचय दिया और कहा कि 'रामचरितमानस' में रजोगुणी बाप है वालि। तमोगुणी बाप है रावण। सत्यकेतु और स्वयंभू मनु सत्त्वगुणी पिता है। लेकिन गुणों से पर दो बाप है 'मानस' में, एक शंकर और दूसरे राम।

बापू ने ऐसा सूत्रात्मक निवेदन भी किया कि जो माता-पिता हाज़िर नहीं है उसका स्मरण करो और जो हाज़िर है उनकी सेवा करो। जो नहीं है उनका स्मरण करो। इस श्राद्ध के बहाने, उसके सुकर्मों के बहाने, उसने तुम्हें जो संस्कार दिये हो उसी के बहाने जो पितृ हाज़िर नहीं है उनका स्मरण करो; जो है उनकी सेवा करो।

पितृ बाधक बन रहे हैं, ऐसा मानकर परिवारजनों डाक बजाते हैं, इसके बारे में किसी श्रोता की जिज्ञासा के उत्तर में बापू ने कहा कि पितृ बाधक बने ऐसा मुझे अनुभव नहीं है। लोग कहते हैं कि पितृदोष है। अंधश्रद्धा, दोरे-धागे, डाक ये सब न करो तो अच्छा है। श्रद्धा से डाक बजाओ तो शिव का वाद्य है। मेरी सलाह है कि आपको पितृ बाधक है ऐसी भ्रान्ति हुई है।

जिस प्रदेश में यह कथा हुई थी वहां की आदिवासी प्रजा को धर्मांतरित करने की चेष्टा होती रहती है इसके संदर्भ में बापू ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि खुद के कुए का पानी पीओ। यहां-वहां मत जाओ। सेवा के नाम, प्रलोभनों के नाम, चमत्कारों के नाम आपकी मानसिकता बदल दे वो ठीक नहीं। सबका स्वागत है। लेकिन इरादा सबका मलिन है। घर वापस आ जाओ। सनातन धर्म हमारा घराना है। किसी का निषेध नहीं करना है लेकिन भटक गये हो तो वापस आ जाओ।

'मानस-पितृदेवो भव' रामकथा के माध्यम से मोरारिबापू ने यूं पितृचरण की महिमा की एवं समाज को जागृत भी किया।

-नीतिन वडगामा

मानस-पितृदेवो भव : ९

'मातृदेवो भव' है सत्य, 'पितृदेवो भव' है प्रेम और 'आचार्यदेवो भव' है करुणा

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।

बाप! अस्तित्व के आदेश से सापुतारा में नव दिवसीय रामकथा का आरंभ हो रहा है तब यहां घूम रही सभी चेतनाओं को, कथा में उपस्थित पूज्य चरणों में और विध-विध क्षेत्र के हमारे आदरणीय विशिष्ट महानुभावों, यजमान परिवार और आप सभी मेरे भाई-बहन, सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

मैं स्मरण करूं पहले तो, बहुत सालें गुज़र गई; अब तो हमारे बीच में नहीं है, लेकिन उनकी चेतना घूम रही है वो माँ पूर्णिमाबहन पकवासा, जो बहुत स्नेह आदर रखती थी; जिसने नव दिन के लिए यहां कथा मांगी थी। एक बार पहले मैं ऋतंभरा संस्था में से एक कार्यक्रम में आया भी था आपकी उपस्थिति में लेकिन कुछ योग नहीं बना, नहीं बना, नहीं बना! आप नादुरस्त होती चली। और आज हमारे बीच में नहीं है! लेकिन ये आपकी तपस्थली है। उसके परिवार से आप सभी यहां उपस्थित है। और उसका सच्चा परिवार तो यह बेटियां जो यहां शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर रही है।

तो मुझे खुशी इस बात की है कि माँ का ये शिवसंकल्प, पूर्णिमाबहन का शिवसंकल्प हेतल बहन और दीपक परिवार पूरा करने जा रहे हैं; उसकी मुझे बड़ी खुशी है। और अभी दीप प्रज्वलित हुआ माँ के परिवार की बेटियों से और छात्राओं से। और आप तो रजत शर्माजी की 'आपकी अदालत' में मेरी जज थी; मुझे बेगुनाह बरी किया था आपने, योर ओनर! बहुत-बहुत शुक्रिया। तलगाजरडा भी आप आई। तो माँ के स्नेह-आदर को याद करूं और ये निमित्तमात्र यजमान परिवार बहन हेतल, भाई दीपक और पूरा परिवार और उसके साथ जुड़े सब कितने समय से कथा मांगते रहे थे, मांगते रहे थे। आज योग बना और हम आज यहां है।

मैं सोच रहा था कि सापुतारा की कथा में किस विषय को केन्द्र में रखूं? जिसका मूल वेदों में हो; जिसका मूल उपनिषद में हो; जिसकी जड़ें 'रामचरितमानस' में हो, हमारी पूरी पूर्वीय परंपरा में हो। तो मैं सोच रहा था; एक दिन

पहले मैंने शायद निर्णय किया कि पितृपक्ष चल रहा है; श्राद्ध-पक्ष का आरंभ हो चुका है। और मेरी व्यासपीठ कभी शायद कश्मीर में 'मानस-मातृदेवो भव' पर मुखर हुई थी, माँ के चरणों में। मैंने सोचा कि इस कथा में मैं 'मानस-पितृदेवो भव' को केन्द्र में रखते हुए संवाद करूं। 'रामचरितमानस' में 'पितृदेवो भव' सूत्र की कितनी जड़ें है और पितृपक्ष चल भी रहा है, तो अस्तित्व के आदेश से मुझे लगता है कि उसी को केन्द्र बनाए।

बाप! मेरे अनुभव में; मेरी समझ में 'मातृदेवो भव' ये सत्य है। माँ के समान कोई सत्य नहीं, ये याद रखें। 'मातृदेवो भव।' का अर्थ यदि तलगाजरडी आंखों से देखकर किया जाये तो मेरी समझ में 'मातृदेवो भव।' ये सत्य है, 'बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।' 'पितृदेवो भव।' ये प्रेम की जीवंत परिभाषा है। इसका मतलब माँ में प्रेम नहीं होता ऐसा मत सोचना; इसका मतलब बाप में सत्य नहीं होता ऐसा नहीं। अपवाद होते हैं। अपवाद तो बहुत होते हैं। ये कलिकाल है; ये कलिप्रभाव है। अपवाद को कुबूल करना पड़ता है। इसलिए हमारे यहां वृद्धाश्रम बढ़ते जा रहे हैं।

तो मेरी समझ में ये आ रहा है कि जो उपनिषद के मूल सूत्र है, 'मातृदेवो भव।' है सत्य, 'पितृदेवो भव।' है प्रेम और 'आचार्यदेवो भव।' है करुणा। ये सत्य, प्रेम और करुणा एक त्रिकोण है। इसका मतलब नहीं कि आचार्य में सत्य नहीं है, आचार्य में प्रेम नहीं है और बाप में करुणा नहीं है; बाप में सत्य नहीं है अथवा तो माँ में प्रेम नहीं है, माँ में करुणा नहीं है। कोई भी सूत्र को चारों और से देखना पड़ेगा। तो सोचा कि इस विषय पर बोला नहीं गया।

'रामचरितमानस' में किस-किस को पिता कहकर पुकारा गया? आपको बहुत मिलेगा। लेकिन मैं नव को आपके सामने पेश करना चाहूंगा। बाकी कई बार तुलसी ने 'पितु' शब्द का प्रयोग किया है। कई बार तुलसी ने 'पितुहि', 'पिता', 'तात' 'जनक' कितने सगोत्री शब्द की बरसा की है! 'मानस' में 'बापू' केवल एक बार है। तो 'तात', 'बापू', 'पितु', 'पिता', 'जनक' बहुत बड़ी संख्या में शब्दब्रह्म मिलते हैं। 'मानस' में किसने किसको पिता कहा? किसने किसको बाप कहा? ये बहुत बड़ा आंतर-दर्शन का विषय बन जाता है।

हम आज से नव दिन तक यहां बातें करेंगे। इसमें मैं बोल रहा हूं इसलिए मैं उपर बैठा हूं। मैं बार-बार कहता हूं, सुनने का जब मेरा स्वधर्म होता है, मैं आपके समान नीचे ही बैठ जाता हूं। लेकिन हमारी और आपकी एक टोक हो, संवाद हो, वार्तालाप हो। और हम बैठकर नव दिन सुंदर प्रकृति से भरी हुई इस पुन्यमयी भूमि पर संवाद करेंगे। केन्द्र होगा 'रामचरितमानस'- रामकथा; सूत्र होंगे 'रामचरितमानस' के। तो बहुत बार ये शब्दों का प्रयोग 'रामचरितमानस' में आया है। मैं नव आपके सामने रखना चाहता हूं। सबसे पहले 'पितृ' मेरी समझ में भगवान महादेव है।

जगत मातु पितु संभु भवानी।
तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी।।

कालिदास की स्मृति स्वाभाविक हो जाए। 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।' समग्र जगत का बाप है शिव। उसका हम श्राद्ध करें, यद्यपि वो मरा नहीं है। जन्मेगा वो मरेगा। जो जन्मा नहीं वो कैसे मरेगा? लेकिन श्राद्ध पक्ष में हम इस पर पितृ को याद करके अपनी श्रद्धा समर्पित करें।

तो एक है भगवान शिव। दूसरे है भगवान राम। भगवान कहते हैं कि पिता की बहुत संतान होती है।

एक पिता के बिपुल कुमारा।
होहिं पृथक गुन सील अचारा।
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता।।

दूसरा है हमारा बाप, हमारा पिता, हमारा परम 'पितृदेवो भव।' भगवान राम। तीसरी पितृचरण की वंदना यदि हम करें तो तीसरा पितृचरण मेरी दृष्टि में आता है वो है सत्यकेतु राजा परम पितृचरण है। सत्यकेतु एक बाप ये तीसरा पितृचरण। चौथा पितृचरण है महाराज स्वयंभू मनु, एक महान पितृचरण। पांचवां, पितृ की वंदना में मैं जाऊं तो है 'महिमा अवध राम पितु माता।' राम के पिता महाराज दशरथजी ये पितृचरण की वंदना हम करेंगे। छठे हैं महाराज जनक। 'पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।' महाराज मिथिलेश जनक विदेहराज वो पितृचरण है। सातवां पितृचरण है मेरी दृष्टि में गीधराज जटायु, 'सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।' राम ने उसको बाप कहा। गोद में लिया जटायु को। हमारे देश की संस्कृति देखो साहब! जहां पशु-पक्षी, जात-पांत-वर्ण एक व्यवस्था के रूप में चला, मुबारक। लेकिन यहां हर एक में हरि का दर्शन किया गया है। जो लोग सबमें हरि का भाव नहीं रख पाते वो सब सोये है, बेहोश है; वो जागृत नहीं है; आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये ये सब भले करते हो; खाना, पीना, सोना, लेकिन उसको हमारे देश की सभ्यता ने इन्सान नहीं समझा। 'मनुष्य रूपेण मृगाः चरन्ति।' ऐसा कहकर उसको

फटकार किया है। भगवान राम ने जटायु को पितातुल्य आदर दिया; जो राम अपने दशरथजी की पितृक्रिया नहीं कर पाए थे वो राम ने जटायु की उत्तरक्रिया की। पितृचरण है मेरी दृष्टि में जटायु।

आठवां पितृचरण है तलगाजरडी दृष्टि में अंगद का पिता बालि। मेरी व्यासपीठ बालि को पितृचरण कहकर श्राद्ध करना चाहती है। और नव का अंक ज्यादा प्रिय होने के कारण सूत्रों को इतने में आबद्ध कर लेता हूं। और नववां पितृचरण है दशानन।

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा।।

मेरे बाप हो तुम। प्रहस्त भी कहता है, मेरे बाप हो। तो सबमें कुछ ना कुछ है। जागृति नहीं है तो किसी में सब कुछ हो तो भी हमारे लिए कुछ भी नहीं है। सवाल है जागृति का। चेतना किसको प्रगट होगी? जो जाग रहा है, जो जागृत है उसीके लिए यहां कोई महत्त्व का प्रागट्य होता है। जो सोया है उसी की भेंस तो पाड़ा ही पैदा कर सकती है। ये समझाने के लिए तो मेरी बात है। एक जागृति हो। पाश्चात्य विद्वानों ने धर्म को अफीन कहा! कुछ-कुछ मात्रा में विश्व में, दुनिया में जहां-जहां कुछ ऐसी घटनाएं घटती है तो वहां लगता है कि धर्म ने कुछ नशा दे दिया। आदमी अंधे हो गये। ऐसा भी दिखने को मिलते हैं। लेकिन वैसे समय में मेरे भाई-बहन, रामकथा एक प्रकाश लेकर आ रही है कि हम जागे, हम जागृत हो, हम सावधान रहे ताकि हमारी चेतना प्रगट हो। तो जो जागा है उसको सभी में वो ही दिखाई देगा।

काबे से बूतकदे से कभी बज़्मे जाम से।
आवाज़ दे रहा हूं तुम्हें हर मकाम से।

तुम मंदिर में हो, मस्जिद में हो, गुरुद्वारा में हो, कहीं भी हो। तू ये कोम हो; तू ये कोम हो, कौन जाने! 'रामचरितमानस' ये संवाद और समानता का मेसेज देती है। लेकिन जागे हुए सुनेंगे। जो बेहोश है उसका क्या करोगे? तो न कोई यहां आदेश है; हम साथ में मिलकर संवाद करेंगे। परम पितृचरण भगवान महादेव, पितृचरण भगवान राम, पितृचरण सत्यकेतु, पितृचरण स्वयंभू मनु, पितृचरण महाराज दशरथ, पितृचरण महाराज जनक, पितृचरण गीधराज जटायु, पितृचरण महाबली बालि, पितृचरण दशानन। आओ, नव दिन में ये नवों पितृचरण का श्राद्ध करें। और आप हमारी जो-जो विधि है, श्राद्ध करो; करना ही है। ये होना चाहिए, करो; विचारों से श्राद्ध करो, व्यवहार से श्राद्ध करो।

तो स्वाभाविक निर्णय आता है तो फिर गांठ बांध लेता हूं कि सापुतारा की कथा में 'मातृदेवो भव।' की भूमि और वहां चर्चा करूंगा 'पितृदेवो भव।' की। और मूल में तो कोई ना कोई कृपा करनेवाला 'आचार्यदेवो भव।' ही तो है; कोई सद्गुरु है। उसी के आधार पर हम चलेंगे। तो बाप! 'मानस-पितृदेवो भव' इस कथा का शीर्षक रहेगा; मेइन सब्जेक्ट रहेगा; मूल विचार रहेगा; केन्द्रीय विचार रहेगा। और 'मानस' को केन्द्र में रखते हुए, अन्यान्य ग्रंथों का संदर्भ लेते हुए, अनुभूति और अनुभव और साधुओं से, संतों से जो सुना हो इस में से लेकर हम और आप संवाद करेंगे। हम बहुत आनंद से उस पर विचार करेंगे। तो मैंने 'उत्तरकांड' से ये दो पंक्तियां उठाई है-

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा।
सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना।
जद्यपि सो सब भाँति अयाना।

तो 'मानस-पितृदेवो भव', इसकी थोड़ी छोटी-सी भूमिका मैंने आपके सामने प्रस्तुत की। पहले दिन की कथा होती है तब एक प्रवाही परंपरा-सी बन गई है कि पहले दिन वक्ता को चाहिए जिस ग्रंथ को केन्द्र में रखकर वो कथा गायन करेगा, कथन करेगा, उसका परिचय श्रोताओं को करवाये, जिसको हम माहात्म्य कहते हैं।

तो मेरे भाई-बहन, ये 'रामचरितमानस' तो हमारे घर-घर में है 'रामायण।' गांधीबापू कहा करते थे, जिसको 'रामायण' और 'महाभारत' क्या है उसका जरा भी पता नहीं, उसको हिन्दुस्तानी होने का अधिकार नहीं। घर-घर में कथा है; घर-घर में 'रामायण' है; कोई घर खाली नहीं होगा 'रामायण' के बिना; कुछ ना कुछ ये ग्रंथ होगा। अब सवाल ये है, घर-घर मैं रही रामकथा अब घट-घट पहुंचे उसके हमें संयुक्त प्रयास करने हैं। घर में तो है ही; अच्छा है ये लेकिन घट-घट ये पहुंचे। तो उसका माहात्म्य क्या है?

तो पहले दिन वक्ताओं को जिस ग्रंथ पर वो बोलेगा उसका महिमागान करना चाहिए। तो बाप! वाल्मीकि ने मूल में संस्कृत में कथा लिखी। श्रद्धा जगत कहे, वाल्मीकि ही तुलसी हो गये और संस्कृत के परम विद्वान होते हुए तुलसी ने उसको लोकबोली में कथा

उतारी, भाषाबद्ध कर दी। श्लोक को लोक में उतारा। वाल्मीकि ने जो ग्रंथ की रचना की उसका नाम 'रामायण' है। तुलसी ने लिखी उसका मूल नाम है 'रामचरितमानस।' तुलसी कहते हैं-

रामचरितमानस एहि नामा।
सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा।।

तो जो ग्रंथ-सद्ग्रंथ लेकर हम नव दिन के लिए बैठे हैं, उसका नाम है 'रामचरितमानस।' वाल्मीकि ने 'रामायण' लिखी उसमें कांड है। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड'; तुलसी ने 'कांड' शब्द निकाल के 'सोपान' कहा। यद्यपि हम उससे अभ्यस्त हो गये हैं तो हम 'कांड' बोलते हैं, लेकिन तुलसी ने कहा, प्रथम सोपान, दूसरा सोपान, तीसरा सोपान। ये 'बालकांड' है ये प्रथम सोपान है। ये 'अयोध्याकांड' दूसरा, 'अरण्य' तीसरा, 'किष्किंधा' चौथा, 'सुन्दरकांड' पांचवां, 'लंका' छः, 'उत्तरकांड' सात। सात सोपानवाली सीढ़ी उर्ध्वगमन के लिए अथवा तो जो उतर गये उसको फिर लोगों के बीच में आने के लिए एक सीढ़ी की रचना तुलसी ने की उसका नाम है 'रामचरितमानस।' 'बालकांड' प्रथम सोपान में सात मंत्र लिखे हैं; वंदना की है। तो आइये, एक- दो मंत्रों का स्मरण कर लें-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।।

सबसे पहले वाणी की देवी सरस्वती की वंदना की; विवेक के देव गणपति की वंदना की; विश्वास का घनीभूत स्वरूप भगवान महादेव की वंदना की और फिर श्रद्धा की प्रतिमूर्ति पराम्बा माँ भवानी की स्तुति की। त्रिभुवन गुरु के रूप में भगवान शिव की वंदना की। वाल्मीकि और हनुमानजी की वंदना की। संसार को उत्पन्न करनेवाली, पालन करनेवाली, लय करनेवाली पराम्बा माँ शक्ति जगदंबा जानकी की वंदना की। सीतारामजी की वंदना की।

तुलसी कहते हैं, केवल स्वान्तः सुख के लिए मैं इस परमग्रंथ 'रामायण' संस्कृत में, देवगिरा में उतार रहा हूं। फिर बिलकुल लोकबोली में चौपाईयों में, दोहा में, छंदों में, सोरठें में बीच-बीच में भी कहीं-कहीं शुद्ध संस्कृत में स्तुतियां लगा दी; ये है उसका भाषाकीय स्वरूप।

पांच सोरठे पहले लिखे। जगद्गुरु शंकराचार्य भगवान ने हम सनातन धर्मावलंबियों को आदेश दिया था कि सनातन वैदिक परंपरा से जो जुड़ा है उसको पांच देवों की पूजा करनी चाहिए। एक गणेश; अभी-अभी महोत्सव जो पूरे देश ने, दुनिया ने मनाया; गणेश की पूजा। दूसरी भगवान शिव की पूजा। तीसरी भगवान विष्णु की उपासना। चौथा माँ पार्वती-भवानी की उपासना। और पांचवां भगवान सूर्य; ये पांच देव की पूजा का आदेश जगद्गुरु शंकर ने दिया है। तुलसी तो रामानंदी परंपरा में आये लेकिन फिर भी शांकरी मत को पहले स्थापित करके जगत में समन्वय का सेतु किया। तो पांच देवों की पूजा के लिए पांच सोरठे का सर्जन किया। जो-जो अस्तित्व की व्यवस्था के रूप में इस धराधाम पर आये इन सभी बुद्धपुरुषों लोगों की बोली में बोले हैं। भगवान बुद्ध देखो, राज घराना है; इतने पढ़े-लिखे महापुरुष है लेकिन उनके जो ग्रंथ है सब लोगों की बोली में; भगवान महावीर स्वामी, लोगों की बोली में; पयगम्बर साहब, जिसस, मूल में कोई पढ़े-लिखे नहीं है। सबने देहाती बोली में कहा। और कबीर के आते-आते तो साधुकड़ी बोली में ही उसने डंडा उठाया है। ऐसे महापुरुषों ने लोगों की बोली में बात की।

तो पांच देवों की पूजा; युवान भाई-बहनों को मैं कथा में कहता हूं कि पांच देवों का स्मरण रखो- गणेश, दुर्गा, शिव, भगवान विष्णु और सूर्य। गणेश की पूजा हो; नवरात्रि में दुर्गापूजा हो; सावन महिने में भगवान शंकर की पूजा हो; हम करते हैं। भगवान नारायण, भगवान विष्णु, वेदों से लेकर 'पुरुषसूक्त' लेकर हम उनकी प्रतिष्ठा करते हैं; होनी चाहिए। और सूर्य। तो ये सब करते हैं, लेकिन आपको मैं ये नहीं सीख दे सकता कि आप चौबीस घंटों शंकर को अभिषेक करो; गणेश की पूजा करो। मैं आपको सूत्र के रूप में कहना चाहता हूं कि हे युवान भाई-बहन, गणेश की पूजा प्रत्यक्ष करो तो अच्छी बात है लेकिन न हो तो कोई चिंता नहीं; गणेश विवेक का देवता है; अपने विवेक को बरकरार रखो ये निरंतर गणेशपूजा है। कैसे उठे, कैसे बैठे, कैसे चले, कैसे बोले, क्या खाये, क्या न खाये, हर वस्तु का विवेक जो रखता है वो जो मेरे देश का बेटी हो या बेटा हो, गणेश उपासक है मेरी दृष्टि में। और लाख गणेश की पूजा करे, धमाधम करे लेकिन खुद में जरा भी विवेक न हो! मैंने तो सुना, गणपति के अगल-बगल में ही संध्यापूजा होती है! पीनेवाले पीते हैं! करनेवाले करते हैं कुछ संध्यापूजा, धूप-दीप! सवाल विवेक का है। विवेक का अर्थ है दूध और पानी को बिलग करके विवेक को समझना।

अंधश्रद्धा नहीं और अश्रद्धा भी नहीं; मौलिक श्रद्धा ये गौरीपूजा है। अंधश्रद्धा जरा भी नहीं होनी चाहिए। ये दोरा, ये धागा, ये परचा-परची सब छोड़ो, फेंको। श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। आचार्यो ने कहा, 'आदौ श्रद्धा।' 'भगवद्गीता' ने कहा, श्रद्धावान ही ज्ञान को उपलब्ध होता है। और श्रद्धा हम रखे ये गौरीपूजा है। एक नवरात्रि नहीं, रोज नवरात्रि हैं; वैसे नवरात्रि करनी चाहिए लेकिन श्रद्धा ज़रूरी है। शिव का अर्थ है कल्याण। हम दूसरे के शुभ के लिए सोचे, हो सके तो थोड़ा करे भी; ये हो गया रोज रुद्राभिषेक। और विष्णु का अर्थ है व्यक्ति की विशालता। अपने विचारों को, अपने दृष्टिकोण को, अपनी भावनाओं को विशाल करो, सीमित नहीं, संकीर्ण नही। कूपमंडूकता नहीं। सब मेरे है, मैं सब का हूं, ये विष्णुपूजा हो गई। और सूर्यपूजा का अर्थ है, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' मैं प्रकाश में जीऊं, मैं उजाले में जीऊं, उसी का संकल्प। देवताओं के रूप में तो हम पूजा करे ही, लेकिन न हो तो भी चिंता नहीं; सूत्रों के रूप में हम उसको स्मरे। तुलसी ने पंचदेवों का स्मरण इस रूप में किया है। और शांकर मत को अपनी रामकथा में पहला स्थान देकर शैव और वैष्णवों के बीच में एक गज़ब का सेतुबंध कर दिया; एक समन्वय पैदा कर दिया। इन पांचों देवों की पूजा के बाद तुलसी ने गुरुवंदना की।

मेरी श्रद्धा में गुरु गौरी भी है। गुरु महादेव भी है। गुरु सूर्य भी है। गुरु दुर्गा भी है। गुरु गणेश भी है। क्या नहीं है? गंधर्वराज पुष्पदंत तो कहते हैं कि 'नास्ति तत्त्वम् गुरुं परम्।' गुरु से उपर कोई नहीं। ध्यान देना, क्योंकि गुरुओं के बारे में गड़बड़ बहुत होती रहती है। व्यक्तिपूजा नहीं। गुरु केवल व्यक्ति नही है; गुरु व्यक्तित्व है। गुरु का आरंभ व्यक्ति है। गुरु साधना करता-करता जागृत होते-होते विश्व मंगल की भावना लेकर भजनानंद में डूबता हुआ आगे बढ़ता है तब व्यक्ति मिट जाता है, व्यक्तित्व हो जाता है। 'त्व' लग जाता है उसके साथ और उससे ही डेवलप होता है; तब तो व्यक्तित्व भी नहीं रहता, पूरा अस्तित्व बन जाता है।

मेरे मेरे युवान भाई-बहनों को मैं एक बात कहना चाहूंगा कि गुरु पर शंका करो, चिंता नही है। क्योंकि गुरु आदमी है, इन्सान है शरीरधारी; कमजोरियां होती है। गुरु पर शंका न हो तो अच्छी बात है। लेकिन गुरु पर शंका हो भी जाये तो कोई चिंता नहीं लेकिन एक बात मोरारिबापू की सुनो, गुरुकृपा पर कभी शंका मत करना। गुरु जीव है; हमारे जैसा एक मिट्टी का पूतला है। भूल हो सकती है उसकी। गुरुकृपा पर कभी शंका मत करना। कृपा ये महक है। गुरु ये फूल है। कृपा खुश्बू है, महक है, सर्वव्यापक है। मुझे पाकिस्तानी शायराना परवीन शाकीर की गज़ल याद आती है-

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझपे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे जाना ही नही,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

मुझे तुमसे बिलग कर दे ऐसी राह मैं नहीं पसंद करता। तो गुरु पर कभी-कभी आश्रित को शंका हो भी जाये उसका स्वीकार करना चाहिए। जितनी ज्यादा कृपा गुरु की साधक पर उतरे साधक को चाहिए ओर आनंदित होना है, ओर मस्ती में जीना है। इतना ही विनम्र होते जाओ। जो चुक जाता है वो घाटे का सौदा करता है। गुरु महिमा गज़ब है बाप! गुरुकृपा पर शंका मत करना है; ये तो विश्वास का घनीभूत स्वरूप है।

मेरी समझ में ये आ रहा है कि जो उपनिषद के मूल सूत्र है, 'मातृदेवो भव।' है सत्य, 'पितृदेवो भव।' है प्रेम और 'आचार्यदेवो भव।' है करुणा। ये सत्य, प्रेम और करुणा एक त्रिकोण है। इसका मतलब नहीं कि आचार्य में सत्य नहीं है, आचार्य में प्रेम नहीं है और बाप में करुणा नहीं है; बाप में सत्य नहीं है अथवा तो माँ में प्रेम नहीं है। माँ में करुणा नहीं है। कोई भी सूत्र को चारों ओर से देखना पड़ेगा।

तो पहला प्रकरण शुरू हुआ वो गुरुवंदना का प्रकरण है इसको मेरी व्यासपीठ 'मानस-गुरुगीता' कहती है। आइये, गुरुवंदना की दो-तीन पंक्तिओं का हम गायन करें-

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

तो पहला प्रकरण गुरुवंदना का है। तुलसीजी कहते हैं कि गुरु की चरणरज को मेरी आंख का अंजन बनाकर अब मैं रामकथा गाने जा रहा हूं। बड़ा संकेत है। तुलसी कहते हैं, पहले किसी बुद्धपुरुष की चरणरज से हम नयन को ठीक करें फिर वचन बोले। दृष्टि ठीक नहीं और कितना ही लंबा-चौड़ा हम प्रवचन करे तो कागज़ के फूल है। नेत्रशुद्धि, फिर वचनशुद्धि। तो सबसे पहले पृथ्वी के देवता-ब्राह्मण देवताओं की वंदना की। फिर सज्ज्नों की, समाज के विविध क्षेत्र के महानुभावों की वंदना की। फिर साधु को कपास के फूल की उपमा देकर साधु की वंदना की। फिर साधु-समाज की वंदना की। जैसे तीरथराज प्रयाग में गंगा-यमुना-सरस्वती मिलती है वैसे साधु-समाज में भक्ति की गंगा, कर्म की यमुना और ज्ञान-विज्ञान की सरस्वती मिलती है; तो संत-समाज प्रयाग की वंदना की। उसके बाद सबकी वंदना जड़-चेतन सब; राक्षसों की, असुरों की, खलों की सबकी वंदना तुलसी ने की। क्योंकि गुरुकृपा से आंख पवित्र हो चुकी, कोई निंदनीय नहीं दिखा।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

समस्त जगत सीता-राममय है। जैसे गांधीबापू को बड़ा प्यारा प्रिय पद था नरसिंह मेहता का और विश्व में उसको उजागर किया।

सकल लोकमां सौने वंदे निंदा न करे केनी रे।
वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड पराई जाणे रे।
परदु:खे उपकार करे पण मन अभिमान न आणे रे।

विशाल दृष्टिकोण, संकीर्ण नहीं। पूरा जगत ब्रह्ममय दिखने लगा तुलसी को। फिर तुलसी ने 'रामचरितमानस' में विशिष्ट पात्रों की वंदना शरू की। इसमें जनक पितृचरण, महाराज दशरथजी पितृचरण इन सबकी वंदना तुलसी ने की है। माताओं की वंदना की है। सबसे पहले माँ की वंदना की है। फिर महाराज दशरथजी की वंदना की। जनकजी की वंदना की। भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न महाराज की वंदना की। और फिर ये सबकी वंदना करते-करते नितांत आवश्यक वंदना श्री हनुमानजी की वंदना बीच में लाये।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

तो हनुमानजी की वंदना की। मैं हर वक्त कहता हूं, हनुमानजी की साधना, हनुमानजी की उपासना, हनुमानजी की वंदना केवल पुरूषों को ही अधिकार है ऐसी भ्रांति निकाल दो। माताओं को भी पूरा-पूरा अधिकार है। क्यों मेरे देश की बेटियां हनुमानजी की वंदना न कर सके? क्यों उसकी आरती न उतार सके? किसने ये नियम बनाये? कुछ बातें ऐसी गलत डाल दी जाती है, उसको निकालने में शताब्दियां बीत जाती है। अब देर नहीं होनी चाहिए।

तो हनुमानजी की पूजा सबका अधिकार है। हां, कोई विशेष पूजा-पद्धति हो उसमें यदि कोई नियम लागू हो तो नियम क्यों तोड़े? बाकी अधिकार नहीं है, ऐसा सूत्रपात नहीं होना चाहिए। माताओं को अधिकार है बाप! हनुमानजी की पूजा करे; 'हनुमानचालीसा' का पाठ कर सकते हैं; 'सुन्दरकांड' का पाठ कर सकते हैं। हनुमान को हम दादा कहते हैं। दादा सबका होता है। तो हनुमानजी की वंदना तुलसी ने की और हनुमानजी पंचप्राण में से मुख्य है; प्राणतत्त्व है। 'रामचरितमानस' में जानकी प्राण छोड़ने की तैयारी में है तो हनुमानजी ने बचा लिया; सुग्रीव का प्राण संकट में हनुमान ने बचा लिया; भरतजी चौदह साल की अवधि पूरी हो जाये और राम ना आये तो मरने की कगार पर है तब हनुमानजी ने जाकर बचा लिया। बंदर-भालूओं को सीता की खोज़ के समय तृषा लगी, भूख लगी तब हनुमानजी ने प्राण संकट से बचाया। तो प्राणतत्त्व है हनुमानजी; कोई भी उसकी सेवा-पूजा कर सकते हैं।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

तो हनुमानजी महाराज की वंदना की, मानो प्राणतत्त्व की वंदना की। उसके बाद राम-अवतार कार्य जो था, उस समय जो उसके सखा, जो संगी-साथी थे उन सबकी वंदना गोस्वामीजी ने की। और उसके बाद सीता-राम वंदना शुरू करते हैं। उसमें भी पहले वंदना माँ की, बाद में 'पितृदेवो भव।' ये पूरा उपनिषदीय क्रम तुलसी ने गिन-गिन के रखा है। सीताराम की वंदना की। उसके बाद गोस्वामीजी नव दोहे में रामनाम महाराज की वंदना करते हैं; नाम की महिमा का गायन करते हैं; नाम महाराज की वंदना करते हैं। लेकिन इसकी चर्चा हम कल करेंगे।

मानस-पितृदेवो भव : २

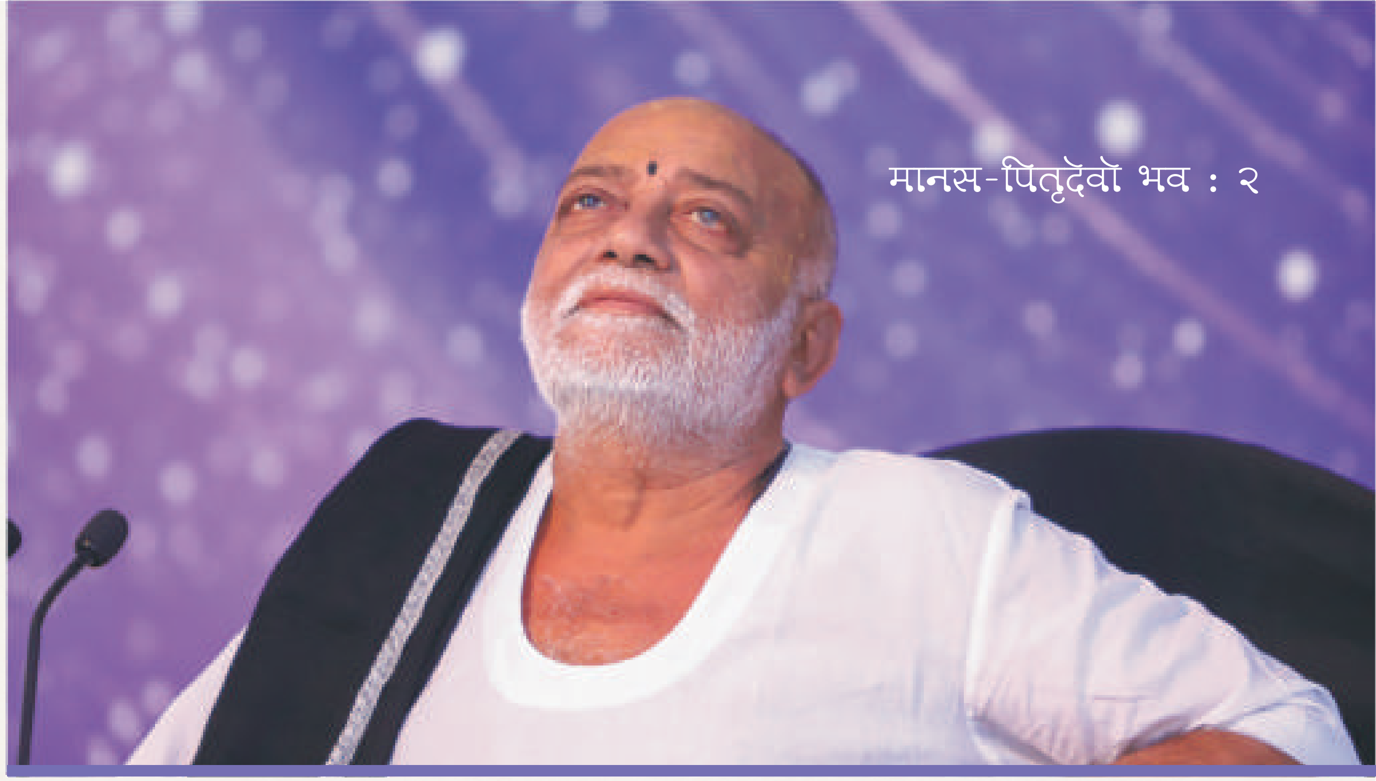

बाहर संसार और भीतर संन्यास हो वह पिता योगी है

भगवान राम 'उत्तरकांड' में बोले, जैसे एक पिता को कई पुत्र होते हैं; सबके शील, गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। पिता सबके स्वभाव से, गुणों से, शील से परिचित होते हैं। सब पर पिता की बराबरी होती है उनमें से भगवान राम स्वयं बोले हैं कि जो पितृभक्त है और वो भी मन, वचन, कर्म से पितृभक्त है; मन, वचन, कर्म से पितृभक्ति के सिवा जिसके मनमें ओर कोई धर्म नहीं है, ऐसा पुत्र पितृचरण को प्राण समान प्रिय होता है। ज्ञानी पुत्र पिता को आंख समान प्रिय होता है। आंख ज्ञान का प्रतीक है। पुत्र पिता के मन की बात पूरी करता है इसलिए मन की तरह प्रिय है। पिता के कदमों पर चलनेवाला पुत्र पिता को अपने चरणों की तरह प्रिय है। पिता की कुल परंपरा को अपनी औकात के अनुसार, समझ के अनुसार वर्तन में डालकर इस प्रवाही परंपरा को संभाले; कितनी भी तरक्की करे फिर भी विनम्रता बरकरार रखे वो पुत्र पिता को सिर के तुल्य प्रिय है। लेकिन भले बिलकुल अज्ञानी हो, कुछ नहीं जानता हो, फिर भी केवल पितृभक्ति जिसका एकमात्र जीवन का लक्ष्य है; मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, पिता को वो पुत्र प्राण से भी प्यारा है। और प्राणाधिक प्रिय हमारे यहां सर्वाधिक प्रिय का लक्षण बताया गया है।

बाप! किसीने पूछा है कि कभी-कभी ऐसा क्यों देखने को मिलता है कि परिवार में जो बड़ा है, बाप है, दादा है, ज्येष्ठ बंधु है, उससे पहले उससे छोटे की मृत्यु क्यों हो जाती है? क्या कोई नियति का खेल है? क्या कोई सिद्धांत बाध्य करता है? क्या कोई अति भगवंत विचित्र गति का शिकार हम बन जाते हैं? है क्या?

विश्व वंदनीय महात्मा गांधी बापू भी कहते थे कि विश्व में रामराज्य हो। हम भी कहते हैं विश्व में रामराज्य हो। और रामराज्य का तो नियम है, पिता से पहले पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी। क्या समय रहा होगा कि जो उम्र में बड़ा है उससे छोटी उम्रवाला निर्वाण को प्राप्त नहीं करता; उसकी मृत्यु नहीं होती। लेकिन दुनिया में दिखता है। क्या समाधान इसका? जब पितृ प्रसंग चल रहा है, जरा गौर करो और आपकी आत्मा का सत्य बने तो उस पर होमवर्क करे, आपका शोक कम हो जाएगा; शोक निवारण हो जाएगा। परमात्मा करे, किसी के घर में ऐसी घटना न हो; हम सब चाहते हैं। 'सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।' यही तो भारतीय मनीषा की पुकार है, शतायु हो लेकिन फिर भी घटनाएं घटती है। लोग शोक व्यक्त करते हैं, अरेरे..! आपका बेटा मर गया! आपका भाई मर गया!

कई लोगों को विवेक नहीं है तो पता भी नहीं है कि हम शोकाग्नि में घी डाल रहे हैं! यह विवेक सीखो सत्संग से। सत्संग ब्रह्म की प्राप्ति न करवाए तो कोई चिंता नहीं क्योंकि ब्रह्म ओलरेडी हमें प्राप्त है। प्राप्त है क्या, यदि जागृति हो जाए तो हम स्वयं ब्रह्म है। यही बात तो वेदों ने आदि काल से कही। 'अहं ब्रह्मास्मि।' वहां तो कहा, मैं केवल शिव हूं। 'चिदानंद रूपः शिवोऽहं, शिवोऽहं।' न मैं मन हूं, न बुद्धि हूं, न चित्त हूं, न अहंकार हूं, न पंचकोश हूं। मैं कुछ भी नहीं हूं। हम केवल उसका पाठ कर सकते हैं। महसूस कहां करते हैं? सत्य तो यह है कि हम वो ही है। सत्संग का फल यही है मेरे भाई-बहन कि ऐसे विवेक की प्राप्ति हो जो लौकिक विवेक भी हो और अलौकिक विवेक भी हो। कैसे समाधान खोजे ऐसी अप्रिय घटनाओं का जिसे हम अप्रिय कहते हैं। संसारी है तो लगता भी है, स्वाभाविक है। समाधान ऐसे करें कि कोई हमारा पितृ जो परिवार पर बहुत ममता रखता हो, उम्रवाला है, उसकी मृत्यु हो जाती है और परिवार की ममता उसकी छूटी नहीं तो वही पितृ पुत्र बनकर आता है। और यही सिलसिला रामराज्य का टूटे ना इसलिए बाप से पहले वो पितृ बिदा लेता है। कभी शोक मत करना।

नव करशो कोई शोक रसिकडां,
नव करशो कोई शोक।

वह केवल तसल्ली नहीं है, बुद्धपुरुषों की अनुभूति है। हम नहीं जानते कि हमारे घर जो जल्दी चला गया वो कौन था? कोई पितृ होगा। वो बालक बनकर, बेटा बनकर आया। उसमें अकस्मात, रोग उसमें मत जाना। बस, गये क्योंकि वो चाहता है कि मैं उसका पितृ पुत्र बनकर आया; मेरे पहले यह नहीं मरने चाहिए। इसलिए मोह के कारण फिर एक फेरा लगाया। अब निर्वाण के लिए केवल हरिनाम, हरिनाम।

मुझे और आपको सत्संग बैठा कर देता है। विपत्ति किस पर नहीं आती? मैं 'मानस' के एक प्रसंग से मेरे युवान भाई-बहनों को बहुत बल मिले इसलिए कहना चाहता हूं। सुनो, श्री हनुमानजी महाराज, जामवंतजी के साथ अंगद का जानकी की खोज का एक अभियान दक्षिण दिशा की ओर चला। 'किष्किन्धाकांड' में, 'सुन्दरकांड' में यह अभियान चलता है। अब अंगद जिसका नायक है, वो टुकड़ी में हनुमानजी सदस्य है, वयोवृद्ध जामवंतजी है, नल-नील आदि-आदि है। दक्षिण में भगवान ने खास टुकड़ी को भेजा कि सीता की खोज तुम करो। सुग्रीव ने मुदत भी डाल दी थी कि एक महीने में आप खोज करके नहीं आओगे तो मेरे हाथों से तुम्हारा वध होगा। करो या मरो। इस प्रसंग में हनुमानजी सबसे पीछे प्रणाम करते हैं, भगवान ने मुद्रिका दे दी है। लेकिन एक समय ऐसा आया कि जंगल में वो रास्ता चुक गये। न पानी मिल रहा है, न खाना मिल रहा है। भटक गये बंदर-भालू। जिसका अगवान परम पुरुषार्थी अंगद है; जिस टुकड़ी का सलाहकार वयोवृद्ध ब्रह्मा का अवतार जामवंत है; शंकरावतार स्वयं हनुमानजी जिस टुकड़ी का महत्त्व का सदस्य है, यद्यपि वो सबसे पीछे है।

'मानस' में आपको ये तीन प्रसंग ऐसे मिलेंगे जो जंगल में भटका है उसका नाश हुआ है। एक प्रसंग है 'बालकांड' में। राजा प्रतापभानु मृगया करने गये। जंगल में रास्ता चुक जाता है। एक बार जंगल में भुले होने के बाद एक कपट मुनि का संग हो गया। आखिर में उनका नाश हुआ। दूसरे जन्म में वो राक्षस हुआ। दशानन हो गया प्रतापभानु। ऐसा दूसरा प्रसंग आपको मिलेगा, जगजननी सती। राम की कथा सुनकर शिव और सती लौट रहे हैं। दंडकारण्य में राम का दर्शन हुआ। सती को संदेह हुआ। भगवान शंकर ने कहा, आप संदेह न करो। न मानी। राम की परीक्षा करने गई और सती भी जंगल में भटक गई। भटक गई तो सती का सर्वनाश हुआ। लेकिन यह बंदर-भालू भटके फिर भी नाश नहीं हुआ। क्यों? क्योंकि उसके साथ विश्वास रूप हनुमानजी थे। चाहे आगे हो, चाहे पीछे हो।

मेरी विश्वास की बात पर कई बुद्धिजीवियों को, कई लोगों को जो सालों से सुनते हैं उसके मन में भी होता है कि बापू, कहां तक विश्वास? 'कहां तक' शब्द निकाल दो। विश्वास यानी विश्वास। लोग मेरे पास आते हैं, कृपा कैसे होगी? कृपा में 'कैसे' आता ही नहीं। होगी। जिसस कहते हैं, टकोरा मारते रहो और दस्तक देते रहो, द्वार खुलेगा। कोई कहे, मैं यहां जाना चाहता हूं, जगह नहीं मिल रही है। वेईट करो, प्रतीक्षा करो, जगह मिलेगी। तुम जगह का चुनाव मत करो। मालिक सबको जगह देते हैं। आजकल सांप्रत समये में तो बहुत प्रश्न मेरे पास आ रहे हैं कि बापू, कहां तक

विश्वास? मैं कैसे समझाऊं? यह वाणी का विषय होता तो मैं कह सकता क्योंकि मैं बोलता हूं सालों से। यह तो इन्सान की अनुभूति है। हमारे मज़बूर साहब कहा करते थे, 'श्वास टूटता है, विश्वास टूटता नहीं।'

मुझे किसीने पूछा, बापू, प्रेम करने की रीत क्या क्या है? मैंने कहा, देखो भाई, कोई फूल देकर प्रेम व्यक्त करते हैं। प्रतीक है फूल। कोई चिठ्ठी लिखकर प्रेम जताते हैं। कोई रोकर प्रेम जताते हैं। कोई मुस्कुराते प्रेम जताते हैं। कोई नाचकर प्रेम जताते हैं। मैं पूरी दुनिया को प्यार कर रहा हूं। मेरी प्रेम करने की रीत है कथा। यह कथा मैं क्यों कह रहा हूं? मैं कहां एक-एक को फूल देने आऊं? किस-किस के पास पहुंचूं? यहां परम प्रेम की बात है। प्रेम तो मीरां ने किया। प्रेम व्रज की गोपियों ने किया। मुझे कहने दो, प्रेम बुद्धिसत्तम उद्धव ने किया। प्रेम हनुमंत ने किया। प्रेम जताने की कई विधा होती है। हम जब प्रेम की बातें करते हैं तब छोटी-छोटी लगती है। प्रेम तो किया गोपियों ने।

मैं अपनी बात करूं तो मुझे तो भरोसा है इस ज़िन्दगी का। मैं किसी को सुधारने नहीं निकला। कई लोग कहते हैं, बापू, कथा सुनते-सुनते हमारे सालों के व्यसन छूट गयें। अब हम प्याला पकड़ने जाते हैं तो तुम्हारी सफेद दाढ़ी दिखती है! कैसे पीये? व्यासपीठ को पीओ। दुनिया में कभी किसी को पीने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। पूरा मयखाना पीओ। रामकथा एक मयखाना है।

हम दृश्य जगत में रहनेवाले लोग कुछ अदृश्य जगत को बुद्धपुरुष के पास बैठकर जान लें। केवल इस जगत से हमारा नाता; जिसको सौ साल जीने के बाद भी अछूत रह जाते हैं और फेरा खाली हो जाता है। विश्वास की बात जब भी मैं करता हूं। मेरे पास बहुत से प्रश्न आते हैं; मैं हंसता हूं। मैं कैसे डिस्क्राईब करूं कि विश्वास क्या है? भरोसे की व्याख्या है, रखने के बाद कभी भी दिल में ऐसा न हो, मैंने यह नहीं किया होता तो अच्छा होता। निकाल दो। कदम उठ गया, उठ गया। तेरा भरोसा ही तेरा भगवान है। विश्वास उसको कहते हैं। मेरे तुलसी ने 'विनय' में गाया-

बिस्वास एक राम-नाम को।

परम वैष्णव सूरदासजी कहते हैं, श्रीनाथजी को और श्रीमन् वल्लभजी को दो हाथ जोड़कर कहते हैं-

भरोसो दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चंद्र छटा बिनु सब जग मांही अंधेरो।

लेकिन जब हम भटकते हैं; सती की तरह इस संसार के जंगल में जीवन समाप्त कर देते हैं। हम जब भटक जाते हैं और मन में कुसंग हो जाता है तब भटका हुआ प्रतापभानु जान खो बैठता है। लेकिन यहां बंदर-भालू भटक गये जानकी की खोज करते-करते लेकिन इन्होंने जीवन गंवाया नहीं क्योंकि उनके साथ हनुमान था, विश्वास था। हनुमानजी ने सोचा सब दुःखी हो गये हैं; भूखे-प्यासे हैं, भटक गये हैं; सब थक गये हैं, हार गये हैं। श्री हनुमानजी महाराज इस भूखे-प्यासे बंदरों की वेदना देखखर थोड़ा ऊंचे गये; चारों ओर देखा तो एक गुफा देखी। महाराजजी ने सबको कहा, उपर आइए। हनुमानजी का मुझे और आपको संदेश है, जब भी कोई वेदना में हो तब थोड़ा उपर उठ जाये। प्रयोग करना; मनोवैज्ञानिक प्रयोग करना। आपके शरीर में कोई पीड़ा हो और कोई दवा असर न करे तब प्रयोग करना। तुम्हारे मन को दूसरी प्रवृत्ति में लगा दो। पीड़ा कम हो जाएगी। अथवा तो भूल जाएंगे। हमने थोड़ी ऊंचाई पकड़ ली। शरीर से थोड़ा उपर उठे। शरीर से उपर उठना; मन में जाना। लेकिन मन भी तर्क-वितर्क करे, हमने किसी का क्या बिगाड़ा था? हमने तो सभी का भला किया था फिर भी हमें यह पीड़ा, यह मुश्किल; हमारे साथ ही धोखा! फिर थोड़ा उपर उठो। हनुमानजी यही बताते हैं, मन से थोड़ा उपर उठो; बद्धि में चले जाओ; मेरी कहीं चूक हुई है। यह इसका परिणाम है? दूध क्या था? पानी क्या था? वो मैं चूक गया? बुद्धि में चले जाओ। और बुद्धि डावांडौल कर दे तब चित्त में चले जाना। यही तो क्रम है। प्रयोग करना। मैं तो छोड़ देता हूं आप पर। कभी भी मुश्किल आए तो मन में चले जाना; फ़ायदा होगा। न फ़ायदा हो तो पैसे तो दिये नहीं! मुफ्त में सुन रहे हैं! भजन और भोजन अमूल्य है।

प्रसंग आयो तो कह दूं, कथा पूरी हो तो प्रसाद लेना लेकिन बिगाड़ना मत। प्यार से प्रसाद लो। बिगाड़ो मत। स्वच्छता अभियान पूरे भारत देश में चल रहा है। हमारे परम ऋषि कृष्णशंकर दादा कहा करते थे कि संत की क्षण और अन्न का कण बिगाड़ना नहीं चाहिए। जहां

कथा हो वहां एक वातावरण बनाना चाहिए। जो भक्तों केवल तिलक करने आते हैं, केवल आरती करने आते हैं, उन लोगों से भी मेरी प्रार्थना है, रोज पांच रुपया मुझसे ले जाना लेकिन वातावरण मत बिगाड़ना। यह मैं कोई बेकार बोलने नहीं आया हूं। यह मेरा प्रेमयज्ञ है। भजन का प्रसाद है। लेना ही चाहिए लेकिन वो बिगाड़ना मत।

मैं आपसे निवेदन कर रहा था, जब विपत्तियों से घिर जाए तो थोड़ा उपर उठे; मन से चिंतन करे, कहीं मेरा कुसूर तो नहीं है? मेरे किये हुए कर्म का ही फल तो है। थोड़ा रिवर्स चलो। कथा सुनने के बाद यही होमवर्क होना चाहिए। जिसको उपनिषद मनन कहते हैं। यह पूरा क्रम हमारे ऋषियों ने बताया है। उसके बाद बुद्धि से समझिए; बुद्धि से भी समझ में न आए तो 'चित्तवृत्ति निरोधः।' एक ऐसी अवस्था मे चले जाए जहां भगवान की अनवरत कृपा हो। श्री हनुमानजी ने कहा, थोड़ा उपर उठो, थोड़ा उपर आओ। क्या मतलब? यह केवल यात्रा है? केवल एक कथा है? केवल एक मंज़र है? केवल एक कहानी है? यस, अद्‌भुत कथा है लेकिन हर काल में प्रासंगिक है साधना के स्तर पर। इन मित्रों ने कहा, आप कैसे कह सकते हैं? दिखता है कि वहां पानी है? दृश्य जगत को माननेवाली दुनिया है। लेकिन पानी कभी उपर भी होता है, गुफ़ा में भी होता है। करुणा उपर भी दिखती है; कभी गहराई में छिपी रहती है। इसके लिए थोड़ा अंदर जाना चाहिए। अंदर जाने के लिए उपर उठना आवश्यक है।

चक्रवाक पक हंस उड़ाना।

मेरे गोस्वामीजी ने लिखा है कि हनुमानजी ने देखा कि तीन प्रकार के पक्षी इस गुफ़ा में उड़ते थे, बाहर आते थे। वे तीनों पक्षी जलपक्षी है- चक्रवाक, बबुल, हंस। हंस तो सिद्ध कक्षा की आत्मा मानी जाती है। हंस विश्व महापुरुष का लक्षण है। चक्रवाक आदर का प्रतीक माना गया है। बबुले बिलकुल विषयी है। इस गुफ़ा में यदि परमात्मा तत्त्व का जल है, कृपा है तो कृपा तो हंसों को मिलनी चाहिए। कृपा कभी भेद नहीं करती कि तू साधक है? विषयी है? पंख हो तो उड़, पानी पी ले। कभी भी वर्षा ने बादलों का चुनाव नहीं किया कि यहां रेगिस्तान है, यहां समंदर है; यहां बरसों, यहां न बरसों। मेघ का स्वभाव है बरस जाना। कृपा का स्वभाव है बरस जाना।

मैं बहुत ईमानदारी के साथ एक साधु के नाते कूटस्थ-तटस्थ भाव से कह सकता हूं जिम्मेवारी के साथ कि भरत और लक्ष्मण का राम की सेवा में, परमात्मा का आश्रय और प्रेम कुछ ओर बातों में और अधिक है। लेकिन हनुमानजी की तुलना में न भरत आता है, न लक्ष्मण आता है। भरत कहते हैं, मैं साथ में बैठता हूं तो चेहरा देख भी नहीं पाता, दूर से देखता हूं। इसलिए मैं साथ नहीं रहता, दूर बैठता हूं। लक्ष्मणजी ने कहा, मैं दूर नहीं, साथ ही रहूंगा। और हनुमानजी साथ रखे तो साथ, दूर रखे तो दूर। कहे, जा, अब साथ बैठने की ज़रूरत नहीं, सीता की खोज कर; तो गया। लंकाविजय के बाद भगवान ने कहा, हनुमान, अब जा, तू निकल जा। तुझे विमान में नहीं बैठना है; भरत को खबर दे। युवानों, प्रेक्टिकल बनो। हनुमानजी युवानों के परम आदर्श है। कभी विराट, 'कनक भुधराकार शरीरा।' कभी 'मसक समान रूप कपि धरी।' कभी इतना मौन कि लगे, आदमी को बोलना ही नहीं आता है! कभी गर्जना करे तो राक्षसियों की स्त्रीयों का गर्भपात हो जाता था! कभी निकट, कभी दूर; कभी वियोग, कभी योग; सब परिस्थिति का स्वीकार हनुमंत तत्त्व है। हनुमंत शंकर का अवतार है। और शंकर 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।' जगत का पिता है; पितृचरण है। कभी बोलता है; कभी सुनता है हरिकथा तो आंखों से अश्रुपात होता है। कभी वीर रस में आता है। 'किष्किंधा' और 'सुन्दरकांड' में देखो। हनुमान कभी एक रस में नहीं है। कभी यह, कभी यह, कभी कुछ। और 'हनुमानचालीसा' में कितने रूप?

रामदूत अतुलित बलधामा।
अंजनि पुत्र पवन सुत नामा।।
महाबीर बिक्रम बजरंगी।
कुमति निवार सुमति के संगी।।

कभी सूक्ष्मरूप, कभी विकट रूप, कभी फलां रूप, कभी फलां रूप। हम अपने-अपने दायरे में बंध गये हैं। हनुमान कितने प्रासंगिक है! हनुमान लंका के रणांगण में सुबेल पर्वत पर राम के चरण दबाते हैं। हम क्या करते हैं, चरणसेवा हमको ही मिलनी चाहिए! हनुमान ने जिद्द की 'मानस' में? हम यही सीखे हनुमानजी से। हम दृश्य में माननेवाले लोग अदृश्य कृपा को महसूस नहीं कर पाते हैं।

तब चाहिए विश्वास की अगवानी। शुरूआत में अंगद आगे था। कृपा की अगवानी में हनुमान आगे हैं। क्या मतलब? तलगाजरडी दृष्टि से कहूं तो युवान भाई-बहन, तुम्हारी यात्रा में पहले पुरुषार्थ हो लेकिन आखिर में तो विश्वास ही होना चाहिए। 'बिनु बिस्वास भगति नहिं होई।'

हमारी चर्चा चल रही है कि नियति है; कोई कर्म की लेन-देन है; कोई कालधर्म काम करता है; या 'मानस' में 'अति विचित्र भगवंत गति' उसीका कारण है। कभी-कभी परिणामों में बड़ों से पहले छोटे चले जाते हैं तब उसका समाधान यही है। कोई पूर्वज, कोई पितृचरण जो अपने परिवार पर बहुत ममता करता हो वो चले गये और इस ममता के कारण उसको फेरा लगाना पड़ता है तब कुछ समय के लिए, अपनी तसल्ली के लिए, घर में ही जन्म लेकर आ जाते हैं। लेकिन ये पितृ है। 'गीता' कहती है, भूत को भजे उसे भूत मिलता है; देवताओं को भजे उसको देवता मिलता है; मुझको भजे तो मैं मिलता हूं; पितृओं को भजे तो उसे पितृओं मिलते हैं। ऐसा 'गीता' का निर्णय है।

कौन हमारे पितृचरण हो सकते हैं? किस बाप का हम श्रद्धा से श्राद्ध करे? 'पितृदेवो भव।' याद रखो युवान भाई-बहन, पिता के कदमों पर चलो; बाप की जो परंपरा हो यह किंचित्‌ हो सके उतना निर्वाह करो। और माँ के आगे चलो। ऐसा आगे, ऐसा आगे चलो, ऐसी तरक्की करो कि माँ मेरे पीछे है। माँ से आगे चलो। पिता के कदमों पर चलो। और आचार्य के साथ-साथ चलो। गुरु के संग-संग चलो। जो गुरु फोलोअर्स बना दे; पीछे-पीछे रखे, तो ध्यान रखना। जो गुरु तुम्हें फोलो करे वो भी नकली हो सकता है। गुरु तो वो है, हमारा हाथ पकड़कर 'संगच्छध्वं।' 'आचार्यदेवो भव।' के साथ-साथ चलो। माँ पीछे चले हमारी देखभाल करके। 'पितृदेवो भव।' में बाप आगे चले, इसके कदमों पर बेटा चले। इन तीनों सूत्रों को इस तरह देखो। गुरु-शिष्य हम साथ-साथ भोजन करें, हम साथ-साथ जीएं, हम एक-दूसरें का द्वेष न करें।

पिता की महत्ता है। बाप दूसरे स्थान पर है लेकिन भुला दिया! कम से कम दूसरे स्थान पर तो रखना चाहिए ना! कभी-कभी हम पितृओं के चरण पर चलते नहीं तब गड़बड़ी हो जाती है। कभी-कभी पितृ ही सच्ची सलाह पर न चले तो सर्वनाश हो जाता है। दोनों ओर होना चाहिए। 'महाभारत' में पांडु पितृ है लेकिन उसने कुन्ती की बात नहीं मानी। परिणाम क्या हुआ? कुन्ती सती है। सती एक देवता से पुत्रप्राप्ति कर ले तो उसके सतीत्व का क्या होगा? एक बहुत बड़ा प्रश्न उठा है 'महाभारत' में। कुन्ती सती है लेकिन सूर्यदेवता से पुत्र प्राप्त करती है। 'महाभारत' को न समझनेवाले प्रश्न उठाते हैं कि सतीत्व का क्या हुआ? हमारे यहां मातृधर्म के लिए दो धर्म है- एक सतीधर्म; एक साध्वीधर्म। सतीधर्म में पति ही सबकुछ होता है; साध्वीधर्म में परमात्मा ही सबकुछ होता है; साध्वीधर्म में दैहिक धर्म से ज्यादा परमात्मा की महिमा है। जैसे मीरां; मीरां साध्वीधर्म की मार्गी है। गोपियां साध्वीधर्म की पथिक है। इस गोपीजन भगवान की बांसुरी सुनकर जिस काम में व्यस्त थी, वैसा का वैसा छोड़कर भागी है। जैसे हवा को कोई रोक नहीं सकता। साध्वीधर्म से दीक्षित थी। सतीधर्म यहां गौण है।

मेरे कहने का मतलब है मेरे भाई-बहन कि पितृभक्ति का स्थान है। इसलिए इस कथा में पितृगायन कर रहा हूं। यह सब 'मानस' के मूल में है।

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा।
सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना।
जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।

'जगत मातु पितु संभु भवानी।' जो पितृचरण को इस कथा में याद करना है वो पहले चरण है 'पितृदेवो भव।' भगवान महादेव। और भगवान महादेव के कुछ लक्षण तुलसीदासजी ने दो-तीन बार बताये। आज दूसरे एंगल से देखो कि कौन पितृचरण माने जाए? हिरण्यकशिपु को माना जाये? पहले तो बुद्धि मना करेगी कि कैसे माने? उसने बेटे को हरिभजन करने से मना किया तो कौन है योग्य पितृचरण के लिए? हमारे घर में हमारे पिता हो, दादा हो, जो पितृ हो; मैंने कल भी कहा, आप श्राद्ध करो, पितृतर्पण करो, जो आपकी श्रद्धा हो करो लेकिन अनावश्यक क्रिया हटाओ। श्रद्धा हो तो मैं उसमें बाधक न बनूं लेकिन कौन पितृचरण? किसको पितृदेव कहें? हां, मैं यह ज़रूर कहूं, बाप उस लायक न हो तो भी हमें पितृभाव रखना चाहिए सावधानी से। लेकिन बाप को बाप बनके दिखाना चाहिए।

महादेव के लक्षण मुझे पितृदेव के लक्षण में महसूस होते हैं। 'जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।' नारद ने जो चर्चा की; वहां जो बर की बातें आती है। लेकिन जहां पितृचरण की चर्चा चल रही है तब मुझे उसमें पितृदेवता के लक्षण दिखते हैं। बाप कैसा हो? जोगी। बाप जोगी जैसा हो। आपको लगे कि बाप मेरा संयमी है। मेरा बाप विषयी और लंपट नहीं। यह 'पितृदेवो भव।' मर्यादा से भरा गृहस्थ, सुगंधी संसार। बाहर संसार, भीतर संन्यास, ये पिता योगी है। तुम्हारे अंतरात्मा में भजन करते-करते अंदर से सब छूटने लगे तो भी परिवार को खबर होने मत देना, वरना दुःखी हो जाओगे। तुम्हारा परिवर्तन उसको मत दिखाना। परिवार के बीच में बैठो तो लगे पूरा परिवार संसार है और भीतर कोई देखे तो लगे, पूरा संन्यासी है। पितृ वो है जो योगी लगे, भोगी न लगे। कितनी साधना अर्जित करनी पड़ती होगी?

जोगी का दूसरा अर्थ; अंदर से वैराग्य आ गया हो लेकिन बाप वियोगी न लगे कि नहीं, हमारे साथ है; हमारे सुख-दुःख में साथ दे रहे हैं; भाग नहीं गया। गोस्वामी दूसरा लक्षण शिव के वर्तन में लिखते हैं, मैं इसको पितृपरक अर्थ में ले चलता हूं। जटिल मीन्स जटाजुट; जटाधारी। हमारी छोटी-बड़ी जंजाल वही हमारी जटा है। शंकर गृहस्थ है; संन्यासी नहीं है, वैरागी नहीं है। उसने शादी की है, बच्चे है। पूरा परिवार भूत-प्रेत सहचर है उसके। संन्यासी हो तो मुंडन करवा ले लेकिन यह गृहस्थ है। हम जैसे संसारियों को आधि-व्याधि, उपाधियां, जंजालें वो सब जटाएं है। संन्यासी जटा निकाल दे कि सब जंजट गया! तुलसीदासजी ने शंकर की जटा को मुकुट बना दिया। इस मस्तक से गंगा बह रही है।

बाप! जो पता न लगने दे। परिवार का पालन करे। जिसमें कोई सकामता न हो यह पितृचरण है। जिसका मन कोई लेन-देन के लिए नहीं है; सकाम नहीं होता; मेरे शरीर से तू निकला है; मेरा फ़र्ज़ है समाज में तुझे प्रतिष्ठित कर देना। अकाम मन यह पितृचरण। बेटा यदि कोई परिवार में वेदांती हो जाये तो बाप को ब्रह्मानंद हो। बेटा बड़ा दानी, त्यागी हो जाए तो बाप को परम सुख मिलता है। पुत्र शूरवीर हो तो बाप बेटे के बलिदान का गौरव लेता है। लेकिन 'नारद भक्तिसूत्र' में लिखा है, जिसका बेटा हरि भजता हो, परमात्मा की भक्ति करता हो उसके बाप-पितृ पितृलोक में नृत्य करते हैं। 'सो कुल धन्य उमा सुनहु...' हे पार्वती, वो कुल धन्य है, जिस कुल में बेटा हरिभजन करता है। ब्रह्मानंद, परमानंद, गौरवानंद, सुखानंद यह सब अच्छे शब्द है लेकिन नृत्यानंद कुछ अलग हस्ति है। पितृलोक है कि नहीं मुझे पता नहीं; एक अवस्था का नाम होगा जिसमें पितृगण नृत्य करते होंगे। एक कुल का एक बच्चा हरि भजता है तो पितृ नर्तन करते हैं।

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।।

जब पितृचरण की बात करता हूं तो बाप कैसा हो? नग्न हो। आपको लगेगा, बापू, यह क्या कहने जा रहे हैं? बाप नग्न हो इसका अर्थ है निर्दंभ हो। दंभ के पर्दे में न हो। निष्कपट हो। पट का अर्थ है वस्त्र। निष्कपट हो बाप, जैसा है वैसा। अमंगल बेश मानी उसके शरीर पर अच्छे कपड़े न हो। देखनेवालों को लगे कि ऐसे कपड़े हो गये! यह शिवरूप पितृचरण के लक्षण है। ऐसे पिता का श्राद्ध करो। आप जैसे करते हो ऐसे करो ही लेकिन कल मैंने जैसे कहा, विचारों से श्राद्ध करो। ऐसे पितृचरण के संतानों को कैसे जीना

महादेव के लक्षण मुझे पितृदेव के लक्षण में महसूस होते हैं। 'जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।' नारद ने जो चर्चा की; वहां जो बर की बातें आती है। लेकिन जहां पितृचरण की चर्चा चल रही है तब मुझे उसमें पितृदेवता के लक्षण दिखते हैं। बाप कैसा हो? जोगी। बाप जोगी जैसा हो। आपको लगे कि मेरा बाप संयमी है। मेरा बाप विषयी और लंपट नहीं। यह 'पितृदेवो भव।' मर्यादा से भरा गृहस्थ, सुगंधी संसार। बाहर संसार, भीतर संन्यास, ये पिता योगी है।

चाहिए? उसकी दो पंक्ति जो भगवान राम कहते हैं 'मानस' के 'अयोध्याकांड' में-

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

ऐसे पिता के संतान का कर्तव्य बताया तुलसी ने। भगवान राम माँ कैकई से बात करते हुए बोले, जब उसको कहा गया कि भरत को राज मिले और तुम्हें चौदह साल का वनवास मिले; दो वचन पर तुम्हारे पिताजी बंधन में है। अब वो वचन भी नहीं तोड़ सकते हैं और तुम्हारा स्नेह भी नहीं छोड़ पाते। अब हो सके तो उसको यह धर्म संकट से बाहर निकाल।

राम प्रसन्न होकर कहते हैं, हे माँ! वो बेटा बड़भागी है जो पितु-मातु के बचन का अनुकरण करता है। पिता के वचन को पालने की बहुत बड़ी चर्चा हमारे राष्ट्र में हुई। कभी-कभी तो पुत्र ऐसे निकले कि बाप से कई आगे निकल जाते हैं। बाप की आज्ञा परशुराम ने निभाई। लेकिन इतनी हद तक नहीं होनी चाहिए। तेरी माता को मार दे, ऐसी पिता की आज्ञा को मानकर परशुराम ने अपनी माता को मार डाला! यह पक्ष जरा ठीक नहीं है। उस समय की बात ओर है। माता की हत्या पुत्र करे वहां संस्कृति की सलामती नहीं। कोई विरल घटना में ऐसा होता हो। कई घटनाएं ऐसी है कि बाप की बात न मानी हो पुत्र ने तो भी जय-जयकार हुआ; ऐसे कई उदाहरण है।

कल हम हनुमानजी की चर्चा कर रहे थे। उसके बाद माँ जानकी की वंदना गोस्वामीजी ने की। उसके बाद भगवान राघवेन्द्र की वंदना की। उसके बाद भगवान की नाम महिमा है; नाम महाराज की वंदना, नाम की महिमा का तुलसी ने गायन किया। राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा जो नाम आपको ठीक लगे। चैतन्य महाप्रभु कहते थे, आप कितने भी किसी भी विषय में पारंगत क्यों न हो लेकिन नाम-संकीर्तन न हो तो व्यर्थ है।

सतयुग में ध्यान की प्रधानता थी। हमारे शरणानंदजी महाराज को किसी ने पूछा, भगवन्, ध्यान कैसे करे, जो सतयुग का साधन है। ओशो ने कहा, ध्यान ही धर्म है। कृष्णमूर्ति भी ध्यान पर दबाव देते थे। हमारे वृंदावन के पूज्य टाट बापजी है वो अक्रिय ध्यान की पद्धति समझाते हैं। ध्यान की ज्यादा सफलता सतयुग में हुआ करती थी। शरणानंदजी महाराज को पूछा गया कि महाराज, ध्यान कैसे किया जाए? बहुत प्यारा जवाब जो मुझे रास आता है। ध्यान किया नहीं जता। जहां कर्ता है वहां क्रिया है। कर्ता है वहां सूक्ष्मतः कर्तृत्व का अहंकार है। शरणानंदजी ने कहा, ध्यान करने की चेष्टा छोड़ दो। ध्यान करने से अच्छा है वहां अपनापन बढ़ाओ; वहां अपने आप ध्यान लग जाता है। बच्चें और परिवार से हमारा अपनापन होता है। आप कहीं भी रहो, ध्यान परिवार पर लगा रहता है। कुशल तो होंगे? अपनापन होने के कारण हम ध्यान रखते हैं। मुझे लगता है, वह बहुत प्रेक्टिकल जवाब है।

सतयुग ध्यान की मौसम थी। उस वक्त लोगों को सहज ध्यान रहता था। फिर आया त्रेतायुग। त्रेतायुग में यज्ञ के द्वारा लोगों को भगवान की अनुभूति होती थी, यज्ञ करे। बड़े-बड़े यज्ञ का आयोजन होता था। उस समय प्रधान साधन यज्ञ था। फिर द्वापर आया तो द्वापर में यज्ञ भी करना सुलभ नहीं हो पाया, रजोगुण बढ़ गया। यज्ञ-याग में इतना समय देना मुश्किल था। रजोगुणी आदमी कभी बैठता नहीं और तमोगुणी आदमी कभी उठता नहीं! प्रमाद में बैठा रहता है। मैंने कई महात्मा, साधक देखे हैं, अच्छा प्रोग्राम चल रहा है फिर भी बीच में से उठते हैं! वो नहीं उठता, उसका रजोगुण उठता है! अभिप्राय और अनुभव दो सुख में हम राचते हैं।

कलियुग में ध्यान-यज्ञ नहीं कर सकते। घंटों तक पूजा-अर्चा नहीं कर सकते। हरिनाम चारों जुग, चारो श्रुति का आधार माना गया। भगवद् चर्चा जेसा आनंद कहां है? सबसे श्रेष्ठ तो हरिनाम है। जब अकेले पड़ो तब हरिनाम करो।

मेरे बच्चों, दिल खोलकर तुम खर्च करो,
मैं अकेला ही कमाने के लिए काफ़ी हूं।
- राहत इन्दौरी

एक बुद्धपुरुष का अवतरण खबर नहीं कितने का दायित्व लेते हैं! काशी के मधुसूदन महाराज कहते हैं, जब कोई भी काम न हो तब जितना समय नींद न आए उतना समय हरिनाम लो; उतनी साधना चौबीस घंटों की पूर्ति कर देती है। उसी समय आंख भीग जाए तो समझो, भजन पहुंच गया; रिसिप्ट आ गई।

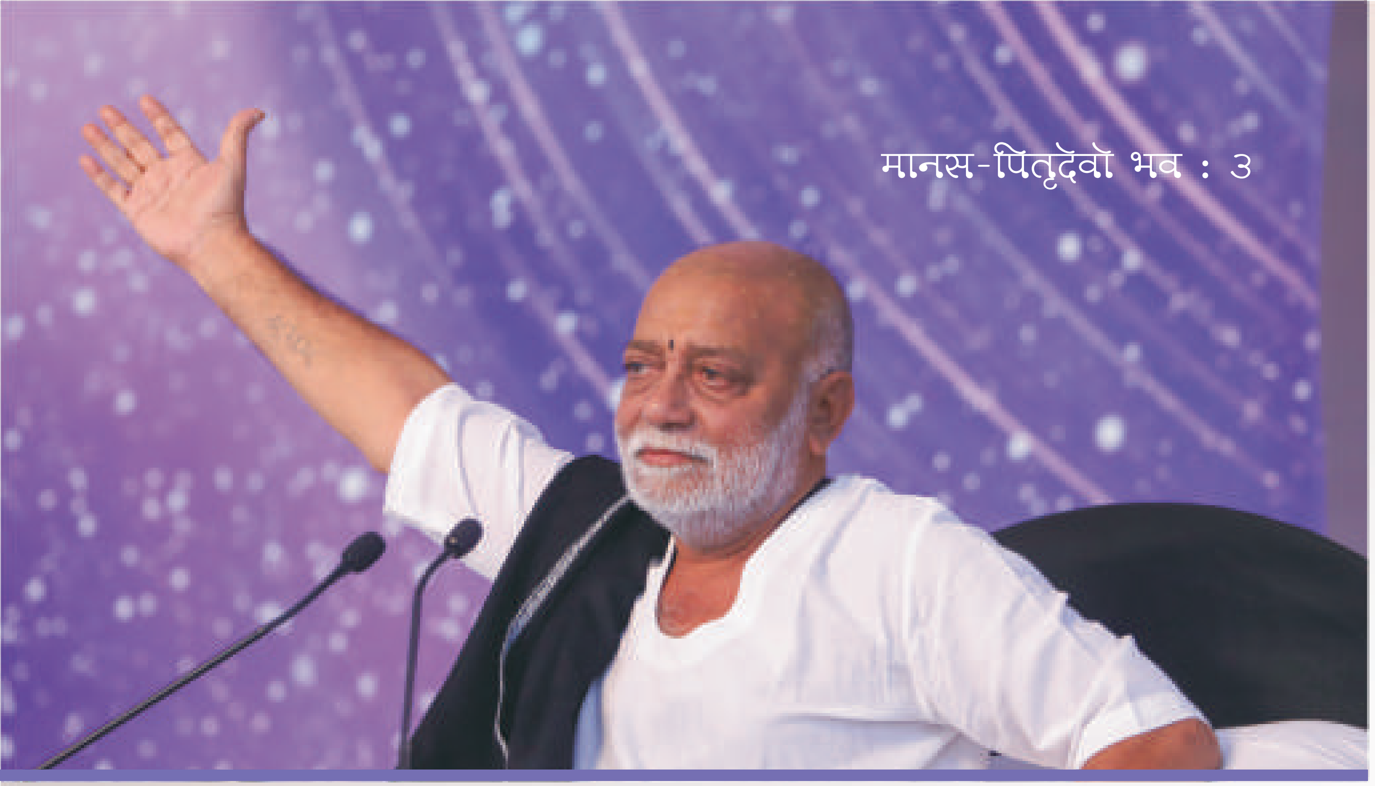

दुःख भी नारायण है, सुख भी नारायण है

'पितृ' शब्द के साथ जुड़े हुए कई शब्द प्रचलित है। 'पितृ' का अर्थ माता और पिता दोनों होता है। इसका प्रमाण 'रामचरितमानस' है-

एहि बिधि राम जगत पितु माता।

यहां भगवान राम जगत के माता-पिता दोनों है, ऐसा संकेत है। तो शास्त्रीय रूप में 'पितृ' का अर्थ है माता-पिता दोनों। एक ही ब्रह्म के अनेक रूप है। अध्यात्म जगत में परमपिता का एक रूप 'मातृ' भी है और एक रूप 'पितृ' भी है। मूलतः 'पितृ' याने माता-पिता दोनों। इसलिए हमारे व्यवहार में दो शब्द आये, 'मातृभक्ति' और 'पितृभक्ति।' तैत्तिरीय उपनिषद में जो सूत्र है, 'मातृदेवो भव।' 'पितृदेवो भव।' 'आचार्यदेवो भव।' 'अतिथिदेवो भव।' कभी-कभी व्यासपीठ कहती है, 'प्रेमदेवो भव।' हम जब परमतत्त्व की प्रार्थना करते हैं तब यही कहते हैं-

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
तुम्ही हो माता, पिता तुम्ही हो।
तुम्ही हो बंधु, सखा तुम्ही हो।

तो 'पितृ' का अर्थ यहां दोनों समझे। 'पिता पातु रक्षणे।' इसका एक अर्थ होता है, रक्षण करे वो पितृ। हम सबका जो पालन करे वो पितृ। पहले वो हमारा पालन करता है, फिर हम श्रद्धा से उसका तर्पण करते हैं। मूल काम तो पितृ ही कर रहा है।

एक प्रश्न है, 'दशरथजी के मृत्यु की खबर भगवान राम को ज़रूर हुई होगी क्योंकि वो सर्वज्ञ है, ब्रह्म है। फिर भी चित्रकूट तक सीताजी और लक्ष्मणजी से बात क्यों छिपाई?' अंतर्यामी के रूप में प्रभु को खबर होगी। और सीताजी को भी खबर होगी क्योंकि वो जगदंबा है, सर्वज्ञ है। और लक्ष्मण शेषावतार है, आचार्य है; तो शायद उनको भी पता हो। लेकिन ये नरलीला थी इसलिए मानव स्वभाव के अनुसार यात्रा चल रही है। तो ब्रह्म के रूप में खबर हुई होगी और मनुष्य के रूप में खबर न भी हो। आगे लिखा है कि पिता की आज्ञा का पालन करनेवाला पुत्र अंतिम विधि का लाभ क्यों नहीं ले पाया? क्योंकि चौदह साल बन में रहने की उसको पितृआज्ञा थी। राम कहते हैं, हे लक्ष्मण, पितृआज्ञा के कारण मैं नगर में नहीं जा पाऊंगा, तुम जाओ। इसलिए भगवान राम अंत्येष्टि में नहीं जा पाए। अथवा मानवलीला में सब चित्रकूट आये तब पता लगा, उसमें भी पितृआज्ञा का आदेशपालन है। और राम के मन में जो पीड़ा रह गई थी वो जटायु की अंतिमक्रिया करके पितृऋण से मुक्ति पाई।

आगे की जिज्ञासा है, 'बहनलोग पति, ससुर की श्राद्धविधि करवा सके?' मेरी दृष्टि से सब छूट है। व्यक्तिगत रूप में कर सकते हैं। मैं तो वहां तक कहूं कि अंतिम विधि में उसकी धर्मपत्नी अग्निदाह दे सकती है; पितृक्रिया में बैठ सकती है। संविधान में समय-समय पर परिवर्तन गतिशील जगत के लिए ज़रूरी है। धर्मसंविधान में मूल उसूलों को पकड़कर देशकाल के अनुसार परिवर्तन कर सकते हैं। बड़े-बड़े धनी परिवार मृत्यु के बाद मेरे पास आये कि बेटी की शादी करनी है, कन्यादान कर सकती हूं? मैं कहता हूं, तेरा ही अधिकार है। ऐसी शादी में मैंने हाजरी देकर देखा कि वो वैधव्यप्राप्त स्त्रीयां बेटी का कन्यादान करती है। ये सब मेरे जैसे बावा को ही पूछना! ये परविर्तन कोई मार्गी ही कर पाएगा। कई पक्षी एक ही कतार में जाते हैं। लेकिन मार्गी का मार्ग है, उसका कोई नियत रास्ता नहीं। इसका मतलब वो स्वच्छंदी नहीं है। वो जहां कदम रखेगा, मार्ग बन जाएगा। वो ज्ञानी के लिए ज्ञानमार्ग; भक्तों के लिए भक्तिमार्ग; कर्मठों के लिए कर्ममार्ग; योगीओं का योगमार्ग; ध्यानीओं का ध्यानमार्ग; भजनानंदीओं का भजनमार्ग।

कुछ समय से मैं मार्गी और गार्गी की चर्चा कर रहा हूं। गार्गी याने वेद की एक प्रज्ञावान महिला और मार्गी याने भजनानंदी मारग। आप सबकी दुआ से; भगवदकृपा से मुझे फायदा हुआ कि जिस परिवार से मैं आया उसमें गार्गी और मार्गी दोनों का योगदान रहा। गार्गी याने विष्णुदेवानंद गिरि जो वेदांती थे। और त्रिभुवनदादा याने मार्गी। मैं कहता हूं, गार्गी बड़ी बहन है, मार्गी छोटी बहन है। मैं जहां से आया वहां मार्गी बड़ी और गार्गी छोटी है। क्योंकि त्रिभुवनदादा बड़े हैं, विष्णुदादा छोटे हैं।

फ़कीरों का भरोसा मत करना! वो क्या करे, कुछ ठिकाना नहीं! प्रज्ञावान पुरुष विनोबाजी ने कहा, मैं विश्वासलायक व्यक्ति नहीं हूं। विनोबाजी और गांधीबापू मार्गी है। मेरा राघव मार्गी है, जो विना पदत्राण चले हैं। मेरा कृष्ण तो पूरी ज़िंदगी मार्गी ही रहा। जमुना में मारग निकाला ये कैसा मार्गी! मथुरा से निकला तब जहां मारग मिला वहां से निकला। शंकर तो मार्गी का आचार्य है; कभी कैलास, कभी विश्वनाथ, कभी सोमनाथ, कभी व्रजनाथ।

तो मार्गी को पूछना। मार्गी का अनादर मत करना। लोक यहां नियम बहुत बनायेंगे! निभा सको तो बात ओर है। वो तो कहेंगे कि बहन कुमकुम की बिंदी नहीं कर सकती। क्यों? मौज न आये तो वो विधवा न लगाए लेकिन लगाना चाहे तो क्यों मना करते हो? मैं कभी कुमकुम की बिंदी नहीं करता। कुछ संकेत है मेरे क्रियाकलाप के पीछे। कोई बहन-बेटी स्वागत कर ले कुमकुम बिंदी से तो ठीक है, वरना थाली को छूकर आदर देता हूं। मुझे शोकातुर समाज को मेसेज देना है कि मैं करूंगा तो काली बिंदी करूंगा, कुमकुम की नहीं। परंपरा का प्रवाह भी काम कर रहा है। हां, मैं नियम तोड़ने की बात नहीं कर रहा हूं, लेकिन थोड़ा प्रेक्टिकल होना पड़ेगा। मेरी व्यासपीठ सदा स्थिर रही है। हवाई जहाज में कथा की; स्टीमर में कथा की तब भी व्यासपीठ एक ही जगह रही। पहली बार व्यासपीठ व्रजचोरासी जा रही है। परिकम्मा करनी है तो परिवर्तन करना पड़ेगा। पहले ऐसा हुआ होगा तो मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे और हमें देखकर जो करेंगे उसको आशीर्वाद देंगे। नृत्य में नकल हो सकती है, कृत्य में नकल नहीं हो सकती।

आगे की जिज्ञासा है, 'बापू, मेरे परिवार में पितृ बाधक बन रहे हैं, ऐसा मानकर दो बार डाक बजाए; कोई हल नहीं मिल रहा है। मैंने परिवार को कहा, कोई बाधा नहीं बनता; किए हुए कर्म ही बाधक है। आप कुछ डाक के बारे में कहिए।' पितृ बाधक बने ऐसा मुझे अनुभव नहीं है। लोग कहते हैं कि पितृदोष है। अंधश्रद्धा, दोरे-धागे, डाक ये सब न करो तो अच्छा है। श्रद्धा से डाक बजाओ तो शिव का वाद्य है। तलगाजरडा में डाक बजानेवालों का मैं सन्मान करता हूं। मेरी सलाह है कि आपको पितृ बाधक है

ऐसी भ्रान्ति हुई है। पूरे जगत का बाप है योगेश्वर कृष्ण। पितृतर्पण में आप पिपल के पेड़ में जल देते हो। तो जब अनुकूलता हो तब प्राची के पिपल, सोमनाथ हो आओ। सोमनाथ पितृचरण है और योगेश्वर कृष्ण भी है वहां। त्रिवेणी का जल लेकर पिपल में जल चढ़ाओ। कोई पितृ बाधक नहीं बनेगा। आपके गांव में पिपल हो और जल न हो तो अश्रु बहा दो, पितृतर्पण हो जाएगा।

एक ओर जिज्ञासा, 'श्राद्धपक्ष में लोग बास डाले, ब्राह्मणों को भोजन करवाए, जिससे पितृ प्रसन्न हो। ऐसा करे लेकिन हमारे पितृओं का दूसरा जन्म हो गया हो तो उनके लिए हम जो करे वो उसको कैसे पहुंचे?' मैंने कल भी कहा कि कभी-कभी पितृ ही हमारे परिवार में आते हैं और पहले छोटे न मरे इसी क्रम को तोड़ने के लिए वो पहले चला जाता है। आपके घर में बच्चा आये और लगे कि हमारे परिवार की ही कोई चेतना आई है, तो उस बच्चे को दूध पिला दो वो श्रद्धा से किया हुआ श्राद्ध है। तुषारभाई की एक कविता-

नाम अने सरनामुं दीधुं, साथ रहे जीवनभर।
मातृप्रेमना दूधमां बोळी पितृप्रेमनी साकर।
तमारा श्वास अमारा श्लोक।
पितृने समझी शके छे कोक।

तो 'पितृ' शब्द का अर्थ माता-पिता दोनों है। इसलिए हम 'मातृभक्ति' और 'पितृभक्ति' दोनों शब्दों का उपयोग करते हैं। 'पिता' याने जो हमारा रक्षक है, पोषक है। 'पिता' शब्द का एक अर्थ सूर्य है। इसलिए हमारे यहां सूर्य को जल का अभिषेक करने की परंपरा आई, ये तत्त्वतः सूर्यरूपी पितृ का अर्घ्य है। 'पितृ' याने एक ऐसा देव जिससे पूरी सृष्टि का सर्जन हुआ है, ऐसा मूल तत्त्व। हमारे यहां एक लोक का नाम है 'पितृलोक।' पितृलोक चंद्रलोक से उपर बताया गया है। 'गीता' में दो यान बताए गए हैं- देवयान, पितृयान। 'पितृश्राद्ध' शब्द भी आया। पितृश्राद्ध सदा अमावस्या का ही होता है। तिथि याद न हो तो बहुधा अमावस्या का दिन पितृश्राद्ध का माना जाता है। नवमी मातृश्राद्ध का दिन माना जाता है। एक नाम है 'पितृज'; कोई परमतत्त्व से प्रगट होनेवाले हम सब जो है; हमारे लिए 'पितृज' शब्द है। 'पितृयाग' शब्द भी आया। लोग पितृयज्ञ करते हैं। एक छोटी-सी गीता है जिसका नाम है 'पितृगीता।'

तो कई नाम 'पितृ' शब्द से जुड़े हुए है। कल तक हम आदि-अनादि देव महादेव शंकर 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।' उसकी चर्चा करते थे। अब भगवान राम जो, 'सकल जगत पितुमाता' है। माँ कौशल्या कहती हैं-

जगत पिता मैं सुत करि जाना।

भगवान ने विराट रूप लेकर कौशल्या के इष्टदेव के मंदिर में अपना रूप दिखाया तो माँ भयभीत होकर स्तुति करने लगी तब कहती है, जगत के पिता को मैंने बेटा मान लिया!

तुलसी कहते हैं, अभिमानी राजा धनुषभंग के बाद तोड़फोड़ करने लगे तब शीलवान साधु राजा कहते हैं, छोड़ो, अब ये बंद करो। हमारी मानो तो ये कोई सामान्य नहीं है; जगतमाता जानकी है और राम पूरे जगत के पिता है। तो राम और कृष्ण हमारे पितृ है। इसके दो अर्थ हुए, सूर्य हमारे पितृ और राम सूर्यवंश में आये तथा कृष्ण हमारे पितृ है क्योंकि वो चंद्रवंश में आये। तो सूर्य-चंद्र को हमारे पितृ माने गए हैं।

कल शंकर को ध्यान में रखकर कहा कि पिता के कैसे लक्षण होने चाहिए? अब राम को पितृरूप में देखें तो राम के लक्षण के दर्शन करने होंगे। जो लक्षण राम बताए वो हमारे पिता में, पितृचरण में, ज्येष्ठ में, हमारे श्रेष्ठ में दिखाई दे तो समझना वो हमारे लिए पितृरूप राम है। परशुराम जब भगवान राम की बात सुनते हैं और उनकी बुद्धि के द्वार खुल गए तो भगवान राम की स्तुति करते हैं, उसी में राम के लक्षणों की गिनती आई। कल भी प्रश्न था कि बाप का क्या अर्थ है? 'बाप' शब्द के दो अर्थ है; बाप याने बेटा और बाप। 'बाप' शब्द केवल बाप के लिए ही प्रयुक्त किया जाता है, माँ के लिए नहीं किया जाता। इसलिए 'रामचरितमानस' में 'बापू' शब्द एक ही बार लिखा है तुलसीदासजी ने-

कुल गुरु हित सम माय न बापु।

तो परशुरामजी स्तुति करते हैं-

जय रघुबंस बनज बन भानू।
गहन दनज कुल दहन कृसानू।।
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी।
जय मद मोह कोह भ्रम हारी।।

'जय रघुबंस बनज बन भानू।' सूर्य के बिना कमल खिलता नहीं। कमल की अपनी शोभा, अपनी खुश्बू, असंगता, रूप और रंग है लेकिन उसका विकसित होना सूर्य पर आधारित है। कमल के पत्ते और फूल सूर्य हो तब विकसित होते हैं। परशुराम कहते हैं, हे राघव, आप रघुवंश के कमलरूपी वन को विकसित करनेवाले सूर्य हो। हम जिस कुल और वंश में आये हैं, उस कुल का विनाश नहीं, विकास करते हो तो इस कुल के लिए हम सूर्य समान पितृ है। कई कुलनाशक होते हैं, कई कुल विकासक होते हैं। राम ऐसा पितृ है हम सबके जो पूरे रघुवंश के कमल को विकसित करते हैं। युगों बीत गए पर आज तक गानेवाले थके नहीं, ऐसा है रघुवंश। कवि कालिदास को पूरा ग्रंथ लिखना पड़ा 'रघुवंश।' मूल तो सूर्यवंश नाम है इस कुल का लेकिन जब रघु आए तब उनके चरित्र के कारण रघुवंश नाम हुआ। कोई ऐसा सपूत निकलता है जो अपना नाम कुल में अंकित कर जाता है। और फिर इस वंश में राम ऐसे राजा आये तो उनके राज्य का नाम 'रामराज्य' में परिवर्तित कर दिया।

पूर्व कथा है, महाराजा रघु, सार्वभौम सम्राट, सूर्यवंश के एक महापुरुष का जन्मदिन था। वो सम्राट होते हुए भी महल में नहीं रहते थे; अयोध्या के चौराहे पर कुटिया बनाकर रहते थे। उसी वंश के राम चौदह साल कुटिया में रहते हैं और भरत नंदीग्राम नाम की कुटियां में बैठते हैं। ये ऐसा कुल है कि इसमें परमात्माओं को आने की इच्छा हुई। इसके गायन से स्वान्तः सुख मिलता है; मन को प्रबोध मिलता है। गायों की सेवा और क्या-क्या नहीं किया इस कुल ने? प्रतिवर्ष महाराजा का जन्मदिन मनाया जाता था। देवता लोग जन्मदिन की बधाई देने के लिए आते थे। साधना छोड़कर ऋषिमुनि आते थे। आचार्य चरण आते थे। छोटे-बड़े सब आकर महाराज को दीर्घायु होने की कामना करते थे। एकबार का जन्मदिन मनाया जा रहा था। बात तो फैल गई थी कि सम्राट के जन्मदिन में कोई भी जा सकता है, इस कारण आदिवासी, गिरिबनवासी, उस समय के उपेक्षित-वंचित लोग जा रहे थे। उन लोगों ने मिलकर एक अच्छे काष्ठ से पादुका बनाई पूरे छः महीने मेहनत करके। हमारे मन में भाव हो तो इस पैर का नाप भी हमें पता चल जाता है। भाव एक ब्ल्यू प्रिन्ट निर्मित करे। रघु के नाप की एक पादुका बनाई और ये लोग अयोध्या आये। तुलसी कहते हैं, ये राम का ऐसा दरबार है, वहां गरीबों का पहले सन्मान होता है।

महाराज रघु को पादुका भेंट की और कहते हैं, हम गरीब लोग ओर क्या लाए? इसलिए ये बनाकर लाए। परमात्मा करे, इस देश में किसी को किसी के सामने कहना न पड़े कि हम गरीब है; ऐसा समाज यदि हम निर्माण कर पाए। कोई कहे, हम गरीब है तो मैं अंगत रूप में बहुत दुःखी होता हूं। गांधीजी ने सही शब्द दिया था, 'दरिद्र नारायण।' जीवन में दुःख हो तो मेरी व्यासपीठ एक शब्द देना चाहती है, 'दुःख नारायण' और सुख हो तो 'सुख नारायण।'

तुकारामजी ने एक पद लिखा है उसमें विष्णुदास के लक्षण गिनाए है। इसमें एक लक्षण यह है कि जो अपने दुःख को हरि की कृपा महसूस कर पाता है वो विष्णुदास है। बहुत कठिन है लेकिन आ जाए तो बहुत सरल है। मुस्कुराहट भी नारायण; मेरे आंसू भी मेरा नारायण। सत्संग इसलिए है कि इस मानसिकता को हम तैयार करे। आदमी जितना बड़ा उतना ज्यादा दुःख होता है। गांधीजी का दुःख पूछो! बाप-बेटे की ज़िंदगीभर नहीं बनी!

सुख-दुःख एक सिक्के के दो भाग है। सुख-दुःख को नारायण समझो। तुकाराम ने कहा, जो सदा दुनिया के सामने विनम्र बनकर झुका रहता है वो विष्णुदास है। नरसिंह मेहता कहते हैं-

सकल लोकमां सौने वंदे, निंदा न करे केनी रे।

दोनों के सूत्र करीब-करीब निकट पड़ते हैं। तुकाराम ने कहा, विष्णुदास के लक्षण में दया, क्षमा और शांति होती है। जो दीन-दुःखी पर दया करते हैं, दुर्जनों को क्षमा करते हैं और शांति की कामना पूरे विश्व के लिए करते हैं। एक बात ये भी आई कि जो विष्णुभक्त है वो जगत को पवित्र समझता है। और परमात्मा पवित्रतम है। ईश्वर हमें ऐसी दृष्टि दे कि पूरा जगत पवित्र दिखे। निंदा तो द्वेष की होती है। जहां द्वेष ही न दिखे फिर किसकी निंदा करे? ऐसा विष्णुदास का वैकुंठ में उत्सव मनाया जाता है और सृष्टि में उनकी गणना बढ़ जाती है। तलगाजरडा की दृष्टि में दुःख भी नारायण, सुख भी नारायण; उपेक्षा भी नारायण और स्वीकार भी नारायण है। जीवन बनाओ यारों! मेरे अनुभव में द्वेष है ही नहीं। प्रेम के अभाव का नाम ही द्वेष है। जैसे ओशो कहते थे, अंधेरा है ही नहीं; प्रकाश की गैरमौजूदगी का नाम अंधेरा है। मजबूर साहब का शे'र है-

कुछ नहीं देते महोब्बत के सिवा।
कुछ नहीं लेते महोब्बत के सिवा।

क्यों मैं रामकथा को ज्ञानयज्ञ नहीं कहता? ये प्रेमयज्ञ है। प्रेम की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई इसलिए हम एक-दूसरे से द्वेष करते हैं। और प्रेम होता है सबको अपना समझने से। मैं आपको गिन-गिनकर बता सकता हूं कि तप करनेवालों ने कभी प्रेम नहीं पाया। हिरण्यकशिपु ने गज़ब का तप किया लेकिन प्रेम नहीं पा सका वो। रावण ने बहुत तप किया लेकिन प्रेम नहीं मिला उसे। सौ-सौ बार यज्ञ करे तब इन्द्रपद पाया जाता है। इन्द्रपद पर जो भी गये वो प्रेम नहीं पा सके। प्रेम के अभाव के कारण वो दूसरों की तरक्की नहीं देख पाया। बहुत जप, तप, ध्यान, योग ये सब अच्छे साधन है। लेकिन योग और ध्यान से भी प्रेम नहीं मिल पाता; तंदुरस्ती और चित्तशुद्धि मिलती है। प्रेम मिलता है अपनापन करने से लेकिन पूर्ण प्रेम तब मिलता है जब सबको अपना समझने के बाद उससे कोई भी चाहना नहीं। इसलिए हमारा ये प्रेमयज्ञ चल रहा है। ये कोई कर्मकांड का यज्ञ या धार्मिक संमेलन नहीं है। ये धर्मसभा नहीं, प्रेमसभा है। यहां सबको समादर है। कोई व्यवस्था के रूप में आपको धक्का दे तो समझना, व्यासपीठ का धक्का नहीं है, बीचवालों का धक्का है। इस दरबार में दीन-हीनों का आदर है। और जो समाज, संस्थाएं, दीनों का आदर न करे उसकी क्या ज़रूरत है? जमाना बहुत गति से बदल रहा है, तुम भी बदल जाओ।

तो गरीब दीन-हीन लोग पादुका लेकर रघु के पास आए। जितना सन्मान वशिष्ठ को मिला, देवराज इन्द्र को मिला, उतना ही रघु ने इस गरीब लोगों का सन्मान किया। सजल नेत्र गरीबों ने पादुका रखी और कहा, हम सोने का मुकुट या हीराजड़ित मोजडी तो नहीं ले पाए। हमारे मन में जो आकार उठता था आपके चरणों के नाप का, पादुका बनाई है। ये नाचीज़ भेंट कुबूल करें। पादुका तो सदैव पैर में होती है। रघु ने पादुका आदिवासीओं के हाथ से लेकर अपने सिर पर धारण की! पूरा साम्राज्य स्तंभित रह गया! क्या क्रांति होने जा रही है? कथा कहती है, ये पादुका तब से राज्य में केन्द्रस्थान बन गई। तब से पादुका पूजी गई। दिलीप, अज, दशरथ सबने पादुका की पूजा की। रघु के समय से पादुका पूजी गई और दशरथ तक ये परंपरा चली।

राम का वनवास हुआ और दशरथजी से राम आज्ञा मांग रहे हैं। महाराज बेहोश की स्थिति में थे। हाथ कांप रहे थे और उसी समय सोचा कि तू तो कहता है, 'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।' मेरे पिता ने मुझे वन का राज्य दिया है इसलिए आज तू राजा बन रहा है। यद्यपि राज्य से निकाला गया है। लेकिन तू वन का राजा बन चुका है। और हमारी परंपरा कहती है, उस आदिवासी दत्त पादुका की पूजा हो इसलिए राजा होने के नाते ये पादुका लेकर तुम वन जाओ। पादुका राम वन के राजा होने के नाते ले गए। चित्रकूट पहुंचे। दशरथजी का अवसान। भरतजी सब को लेकर गए। बड़ी-बड़ी सभाएं हुई। आखिर में निर्णय हुआ कि भरत चौदह साल तक अयोध्या का राज्य संचालन करे और तब भगवान राम ने कहा, अयोध्या का राज्य संचालन जो करे उसको पादुका की पूजा करनी पड़ती है। इसलिए-

प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं।

तो पादुका इस तरह आई थी। ऐसे प्रश्न पूछकर बहुत परेशान करते थे लोग हमारे साधुओं को! एक वस्तु को सिद्ध करने के लिए पूर्वापर संबंध, अन्योन्य शास्त्र का संदर्भ देखना पड़ता है अथवा तो अंतःकरण की प्रवृत्ति प्रमाण है। मैं तो अब अंतःकरण की प्रवृत्ति भी फ़ेंक चुका हूं। शास्त्र प्रमाण? नहीं। अनुमान प्रमाण? नहीं। मेरे लिए भजन प्रमाण है। अपना सिमरन क्या कहता है? गुरुकृपा क्या कहती है? वो ही हमारा प्रमाण, कोई माने या ना माने। सराहना करनेवाले बोले तो प्रमाण मत समझना; विरोध करनेवाला अंतःकरण से बोले तब समझना ये पितृलक्षण है। क्षत्रिय कुल द्रोही परशुराम ये बोले हैं; रामरूपी पितृ का लक्षण है। हमारे परिवार में, हमारे कुल में कुछ आसुरीतत्त्व प्रवेश कर जाए तो उस तत्त्व को हटा दे वो बाप है। हर प्रकार से हमारी रक्षा करे वो हमारे बाप है। और एक बच्चा तुम्हारी रक्षा करे तो एक बच्चा तुम्हारा बाप है; बेटी तुम्हारी रक्षा करे तो वो भी बाप है।

परशुरामजी कहते हैं, देवता, ब्राह्मण और गाय का हित करनेवाला, उसकी जय हो। जहां दैवी विचारों का जतन होता हो, फिर वो अभावों में जी रहा हो तो कोई फ़र्क नहीं पड़ता। जिस वंश में विवेक की प्रधानता हो उसे मैं विप्र कहता हूं। जिस आंगन में भले गाय न हो, लेकिन गोभाव हो, गायों की करुणा है, वो बाप है।

जो बाप होने का मद याने गर्व न करे। पितृ बनने के योग्य वो है, जो धीरे-धीरे मोह को सीमित करे। स्वामी शरणानंदजी महाराज को किसी साधक ने पूछा कि हमारी इन्द्रियों हमें विषय में ले जाती है। आंख किसी का सौंदर्य देखा तो भाग जाती है; किसी ने मधुर बातें कहीं तो कान लालायित हो जाते हैं; किसी का रूप देखकर छूने की कामना हो जाती है। स्वामीजी, कृपया बताओ, ये इन्द्रियां रोके कैसे? तब कहा, एक भाव पैदा करो अंतर रखकर। सब परिवर्तनशील है, ऐसा भाव करोगे तो अपने आप ही सब इन्द्रियां थक कर लौट आएगी।

बाप वो है जो कछुए के अंग की तरह अपने कोह को सीमित करे। कोह याने क्रोध। एक अवस्था आने के बाद जो क्रोध पर काबू रखे ये पितृ हो जाए। जो बाप चौबीस घंटे गुस्सा करता हो उसका क्या श्राद्ध करना? अति क्रोध की समस्या हर परिवार में है। पूरा संसार जलता है क्रोध के कारण! मैं तो एक ही उपाय कहता हूं कि जब क्रोध आये तब पांच मिनट चुप हो जाओ। फिर ठंडे जल से मुंह धो लो। उसके बाद ठंडा पानी पीकर पांच मिनट बैठो। फिर अपना मुख देखो; पहले जैसा लगे तो बाहर जाओ; तो तुम्हें उत्तर देने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। वैसे ही या तो सामनेवाला समझ जाएगा या तो आपको लगेगा कि क्यों क्रोध करे? छोड़ो! या तो जिस पर क्रोध आये, दिन में जितनी बार क्रोध आये उसको सौ रुपया दो; अपने आप शांत हो जाओगे।

परिवार में भ्रम पैदा हुए हो उसको जो हटा दे वो पितृ है।

बिनय सील करुना गुन सागर।

विनय रखे वो ही बड़े। छोटा अविनय करे तो करे। बाप विनयी हो, शीलवान हो। बहुत जिम्मेवारी है पितृचरण की। घर में बेटे हो, बेटियां हो, पुत्रवधू हो, धर्मपत्नी हो, अतिथि आते-जाते हो, तब बाप ये है जो शीलवान है। पूरे घर का गणपति स्थापन हो ऐसे बैठा हो वो बाप। आबरु को गणेश के नाक की तरह लम्बी रखता हो; कर्ण ऐसे सूप जैसे रखे कि छोटा बच्चा बोले वो भी सुने और दूसरे बोले वो भी सुने। तो ये गणेश स्थापन है। मूषक पर चढ़े वो बाप। छोटे-से छोटी वस्तु का स्वीकार करे वो बाप। करुणावान हो वो बाप। संतानों को माफ़ करो; भूल हो तो भी माफ़ करो। बाप पद ऐसे ही नहीं मिलता। महिमावंत है पितृचरण। गुणवान हो वो पितृचरण। परशुराम कहते हैं, राम में ये पितृलक्षण है।

जयति बचन रचना अति नागर।

नागर का एक अर्थ होता है कुशल, चतुर, समझदार। वाणी बोलने में जो चतुर है, कुशल है, सावधान है उसको नागर कहते हैं।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता।
मित्रे अवंचकता गुरोर्विनयता चित्तेऽपि गंभीरता।।

चाणक्य ने एक सज्जन पिता के ग्यारह लक्षण बताए।

आचारे सुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानता।
रूपे सुंदरता शिवे भजनता पितृत्व संदृश्यते।।

ये सभी लक्षणों में मेरा राम पास होता है। धर्म बुलाए तब कूद पड़े वो बाप है। साहस करे कूदने का वो भी अच्छी बात है। मुख में मीठी वाणी हो वो पिता है। दान करने की बात हो तो उत्साह आ जाए। मरने जा रहे सर्प को तुम जगाने की कोशिश करो वैसे आप दान के लिए कितना भी जागृत करो वो बाप नहीं कहलाता। मित्रों के साथ कभी भी छल न करे वो बाप। चाणक्य कहते हैं, अपना गुरुस्थान हो वहां विनयशील हो। चित्त गंभीर हो। छोटी-बड़ी बातें जिसके चित्त को विक्षेप न करे वो बाप। सास यदि बहू पर

इस देश में किसी को किसी के सामने कहना न पड़े कि हम गरीब है; ऐसा समाज यदि हम निर्माण कर पाए। कोई कहे, हम गरीब है तो मैं अंगत रूप में बहुत दुःखी होता हूं। गांधीजी ने सही शब्द दिया था, 'दरिद्र नारायण।' जीवन में दुःख हो तो मेरी व्यासपीठ एक शब्द देना चाहती है, 'दुःख नारायण' और सुख हो तो 'सुख नारायण।' तलगाजरडा की दृष्टि में दुःख भी नारायण, सुख भी नारायण; उपेक्षा भी नारायण और स्वीकार भी नारायण है।

चिल्लाए तो भी ससुर मना करे वो बाप। एक-दूसरे के आचार-विचार, व्यवहार में पवित्रता हो। सद्‌विद्या, सद्‌गुण, सद्‌कला देखे उसमें रस ले वो पिता। शरीर की सुंदरता की बात नहीं है; बाप वो है जिसका मन सुंदर हो। जो बाप 'नमःशिवाय', 'हे महादेव', शिव का भजन करे।

राम शिव का भजन करते हैं। राम धर्मतत्पर है। वन में जाने में पल का भी विलंब न किया। एक पल में राज्य भाई को दान में दे दिया। गुहराज, सुग्रीव, विभीषण सब मित्रों से प्रीति की; किसी से वंचकता नहीं की। चित्त में विक्षेप नहीं है; जहां भी गुणदर्शन किया उसमें रसिकता दिखाई। व्यवहार में पवित्रता; ये सब ग्यारह लक्षण बताए हैं; सब राम में चरितार्थ होते हैं। ऐसे राम है 'दुःख हरनं।' राम के रूप में सुंदरता है। शिव के उपासक है राम। 'सब पर प्रिति प्रतीति जेहि।' लक्ष्मणजी कहते हैं, बाप, आप बहुत भोले हो। भगतबापू की पंक्ति है-

होशियारीनी गांसडीओ सहुने बंधवजे,
छेतराजे समज्या छतां तुं एकलो।
चौद रत्नो मंथनना तुं दई देजे,
शिव थाजे सागर पीनारो एकलो।

तो बाप! 'मानस-पितृदेवो भव' में शिव परमपितृ है। दूसरे भगवान राम परमपितृ है, उसकी 'मानस' के आधार पर, अन्यान्य ग्रंथों के आधार पर हमने बातें कही। नाम-महिमा को कल की कथा में आपके सामने गा रहे थे। तो नाम-महिमा गाकर सुनाया। उसके बाद गोस्वामीजी भगवान की कथा का पूरा इतिहास वर्णन करते हैं। इसकी रचना सबसे पहले अनादि कवि शिव ने की। बहुत काल तक शंकर ने इस रचना को हृदय में रखी। योग्य समय आने पर भवानी के सामने 'रामचरितमानस' गाया। वो ही रामकथा कालांतर में बाबा कागभुशुंडि को मिली। उन्हों ने गरुड के सन्मुख गाया। फिर यही कथा प्रयागराज में जहा गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम है वहां आई। परम विवेकी याज्ञवल्क्य को प्राप्त हुई। उसने भरद्वाजजी के समक्ष गाया। ये प्रवाही परंपरा में उतरी रामकथा रूपी गंगा तुलसी कहते हैं, मैंने अपने गुरु से सुनी वराह क्षेत्र में। लेकिन तब मेरा बचपना था, नादानियत थी कि मेरी समझ में रामकथा उतरी नहीं। मेरी समझ में न आई तो कृपालु गुरु ने बार-बार सुनाया तब कुछ समझ में आया। मुझे लगा कि जो कथा मेरी समझ में गुरुकृपा से आई उसको मैं भाषाबद्ध करूं, लोकबोली में उतारूं; सामान्य जन तक ये कथा पहुंचे इसीलए श्लोक के बदले लोकबोली में कथा को गाऊं। तुलसी ने संपादन किया। विक्रम संवत् सोलह सौ इकतीस की साल, राम नवमी का दिन था। उसी दिन 'रामचरितमानस' का प्रकाशन हुआ।

तुलसी ने 'रामचरितमानस' की तुलना मानस सरोवर से की। मानसरोवर के चार घाट वैसे तुलसी ने संवाद के चार घाट बनाये। ब्रह्मलीन साकेतवासी पंडित रामकिंकरजी महाराज ने इस घाट का शुभ नाम दिया। ज्ञानघाट, जहां शिव और पार्वती के बीच में संवाद हो रहे हैं। कर्मघाट, जहां याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी से संवाद करते हैं। उपासनाघाट, जहां बाबा काग भुशुंडिजी गरुड़ से संवाद करते हैं। शरणागति घाट, जहां तुलसी अपने मन को और साधु-संतों को कथा सुनाते हैं। तुलसी शरणागति के घाट से कथा का आरंभ करते हुए हमें कर्म के घाट पर पहुंचाते हैं।

तीरथराज प्रयाग में कुंभमेला लगा है। कल्पवास करके ऋषिमुनि, देव, दनुज सब अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं। भरद्वाजजी सबको बिदा देते हैं। भरद्वाज के परम रमणीय आश्रम में, याज्ञवल्क्यजी भी ठहरे थे। आपने भी बिदा मांगी तो भरद्वाजजी ने चरण पकड़ लिए कि महाराज, आप रुको। मेरे मन में बहुत गहरा संदेह है, मेरे मन का संदेह निर्मूल करो; रामतत्त्व मुझे समझाओ। शंकर भगवान निरंतर जपते हैं वो दशरथ का बेटा राम कि वो कोई परमतत्त्व है? याज्ञवल्क्य ने कहा, महाराज, आप मूढ़ की तरह प्रश्न करते हैं, क्योंकि आप मेरे मुख से रामचरित सुनना चाहते हैं, बाकी आप राम के गूढ़ रहस्य के ज्ञाता है। याज्ञवल्क्य मुस्कुराए और भरद्वाजजी के सामने 'रामचरितमानस' का गायन शुरू करते हैं। पहले शिवचरित्र से कथा का श्रीगणेश किया। पूछा राम के बारे में और कथा सुनाई शिव की क्योंकि सेतुबंध तो करना था। शिव ही तो द्वार है राममंदिर का। राम-गर्भगृह का द्वार है शिव। शिव याने हनुमान। शिव का चरित्र विश्वास का चरित्र है। पार्वती का चरित्र श्रद्धा का चरित्र है। शिवचरित्र की कथा 'मानस-पितृदेवो भव' की चर्चा करते हुए कल आगे ले जायेंगे।

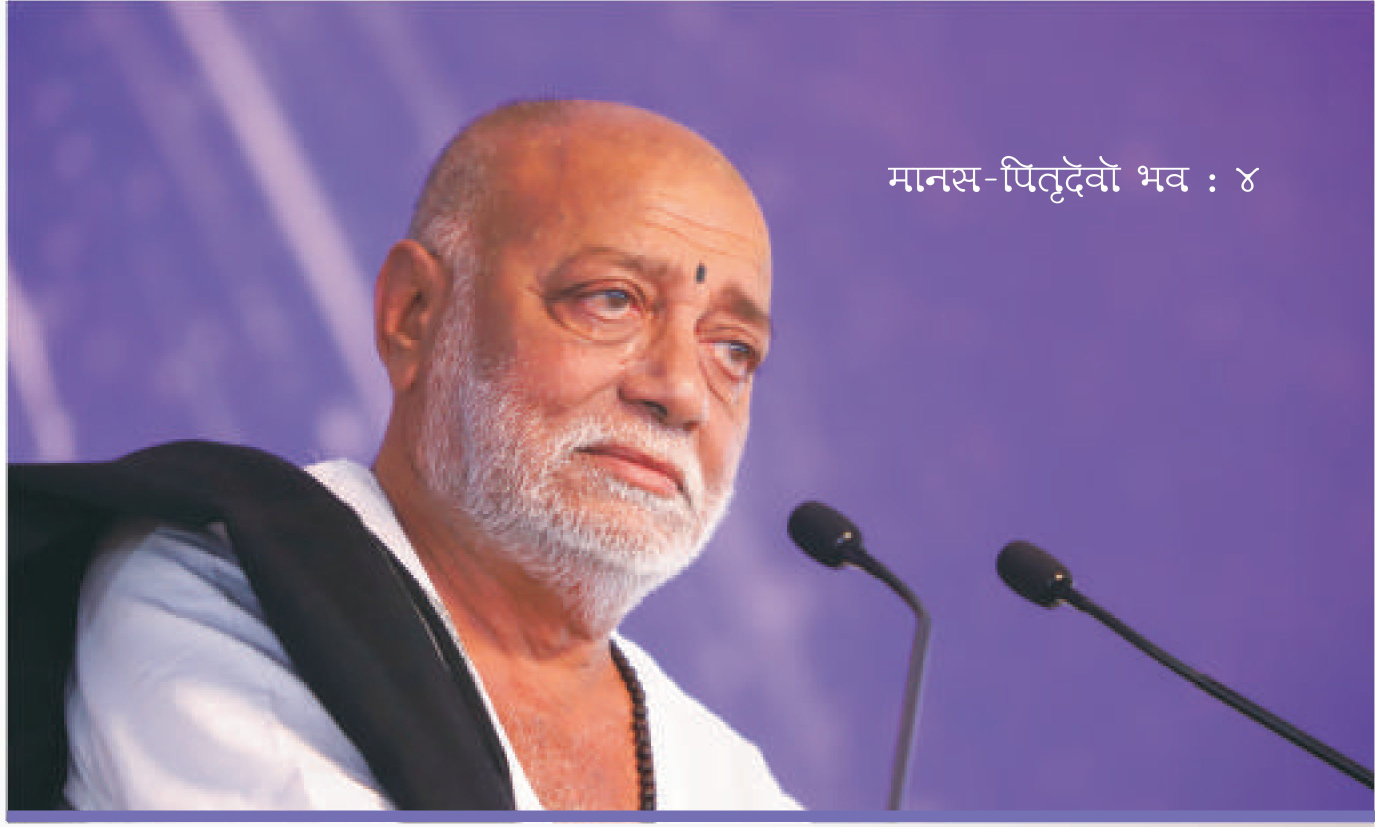

भौतिकवादी चीज़ बदलते हैं, अध्यात्मवादी चित्त बदलते हैं

'मानस-पितृदेवो भव।' जिसको केन्द्र में रखते हुए पितृपक्ष में हम सब कथा के द्वारा पितृतर्पण कर रहे हैं। पितृ के गुण आधारित चार प्रकार है। व्यासपीठ से कहा जाए वो आपके जीवन का सत्य है कि नहीं उसे देखते चलो। यहां से तो वेदप्रमाण से, प्रत्यक्ष प्रमाण से, अनुमान प्रमाण से, अंतःकरण की प्रवृत्ति के प्रमाण से और तलगाजरडा का प्रमाण है भजन प्रमाण, उससे कुछ भी कहा जाए। वेदप्रमाण होगा वेद का; अनुमान प्रमाण होगा तर्कशास्त्र के अनुमान पर; प्रत्यक्ष प्रमाण होगा जिसने देखा उसका; अंतःकरण की प्रवृत्ति का प्रमाण होता है जिसने ध्यान और योग से चित्तवृत्ति को शुद्ध कर दी है। अंतःकरण तो हम सबके पास है। लेकिन सबका अंतःकरण प्रमाण नहीं होता। और सभी प्रमाणों को मेरी व्यासपीठ एक ओर रखते हुए केवल भजनप्रमाण की बात करती है। लेकिन जिसने भजन किया उसी के लिए प्रमाण होगा। आप किस प्रमाण को आदर दोगे? केवल श्रद्धा से, व्यासपीठ के द्वारा बापू ने कह दिया तो बस ठीक है, ये आपकी श्रद्धा भी कारण हो सकती है। लेकिन कोई भी निवेदन जब तक आपका सत्य प्रतीत न हो तब मानना मत। बिना जीवन के सत्य हम बहुत मान लेते हैं इसलिए समाज में अभद्र घटनाएं घटती है। इससे हम जागृत बनें।

तो पिता के चार प्रकार है। कोई पिता रजोगुणप्रधान होता है। हमारे परिवार में भी देखिए, हमारा पिता जो गुणप्रधान है उसमें कोई पिता रजोगुणप्रधान होते हैं, जो केवल प्रवृत्ति ही करते हैं। निवृत्ति की सीमा लांघने के बाद भी प्रवृत्ति करते हैं, समझना, वो रजोगुणी बाप है। बाप का अनादर मत करना। सबका आदर करो। किसी का पिता रजोगुणी है तो मेरी व्यासपीठ को कोई अधिकार नहीं कि मैं उसकी आलोचना करूं। कई बुज़ुर्ग पिता को देखो कि प्रवृत्ति छोड़ते ही नहीं! ये तो धन्य है महाराज मनु, प्रतापभानु का पिता सत्यकेतु। सम्राट के पास, एक समृद्ध आदमी के पास प्रवृत्तियां कम नहीं होती। आदमी पुराना है उसे चीज़ नई चाहिए। अध्यात्म और भौतिकवाद का व्यासपीठ का अंतर यही है कि अध्यात्मवादी रोज़ अपने को नया बनाता है और भौतिकवादी पुराना ही रहता है। लेकिन उसे नई-नई चीज़ें चाहिए। ये रजोगुणियों का लक्षण है।

मनुष्य नहीं बदला, युग बदल गए। दुनिया चांद पर पहुंची है लेकिन वो पुरानी मनःस्थिति न बदल पाए! चाहिए रोज़ नया। हमें रोज़ तरक्की चाहिए। कभी सोचा है कि मेरा भजन रोज़ बढ़े? गुरु को क्या तोहफ़ा दोगे? अपने बुद्धपुरुष को क्या दोगे? बुद्धपुरुष के चरणों में फूल मालाएं ठीक है; बाज़ार में भी बासी फूल मिलते हैं! अपने बुद्धपुरुष को क्या दोगे? मैं मेरे त्रिभुवनदादा को क्या दूं? वो राज़ी हो कि बेटा, भजन और वैराग्य बढ़ता हो तो मैं खुश हूं। हमें रोज़ नई चीज़ चाहिए, नया चित्त नहीं! अध्यात्मवादी कहता है, मुझे नूतन चित्त की आवश्यकता है। अध्यात्म मार्ग सत्य, प्रेम, करुणा का मार्ग है।

मैं मार्गी की बहुत चर्चा करने लगा हूं। जो बहुत आवश्यक है और मैं करता रहूंगा। जनम-जनम मार्गी रहना है। 'चरैवेति चरैवेति।' भले, सावधान करने के रूप में आचार्य चरण ने लिखा है-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनं।

ये सावधानी के लिए लिखा है। मैं तो कहूंगा, 'पुनरपि जननं'; वो ही माँ की कोख से आना है। माँ की कोख में सोने जैसा सुख कहीं नहीं है। माँ की कोख जैसा कोई पलना नहीं है; इसका नाम है, जल-पलना। बच्चे में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार कुछ नहीं है; वो परमात्मा है और जल में तैर रहा है। इसलिए हमारी पूरी वैष्णव परंपरा बालकृष्ण का भजन करती है। हां, योगेश्वर कृष्ण की आलोचना नहीं करनी चाहिए। 'महाभारत' के कृष्ण की आलोचना की तो अपराधी है। योगेश्वर कृष्ण को माननेवाला, 'महाभारत' के कृष्ण को माननेवाला कृपया बालकृष्ण की आलोचना न करे। मेरे तुलसी का इष्टदेव बालक राम है। 'बंदउ बालरूप सोई रामु।' शंकर का इष्टदेव बाल राम है। कागभुशुंडि का इष्टदेव बालक राम है।

इस पवित्र जगत में मेरा प्रेम बढ़ा? मेरी आत्मीयता बढ़ी? वो ही पुराना चित्त, पिटा-पिटाया, रागद्वेषग्रस्त चित्त, वो ही बातें है! कोलाहल तभी ज्यादा लगता है जब अलग-बगलवाले चुप होते हैं।

आज मुझे किसी ने पूछा है कि बापू, हम आपकी पचास-साठ कथा सुन चुके हैं लेकिन हमारे अगल-बगलवालें बहुत निंदा करते हैं। मेढकों को बोलने दो! कौरव बढ़कर कितने हो? सौ से ज्यादा नहीं बाप! कृष्णमूर्ति कहते हैं कि परमात्मा की चर्चा करने के बजाय किसी बुद्धपुरुष के पास चुप बैठो वो परमात्मा से भी ज्यादा उपलब्धि है। क्योंकि शब्दों की चर्चा में परमात्मा खो जाता है, वक्ता आगे आ जाता है। वाह-वाह वक्ता की हो जाती है। शब्द अगवानी करता है तब सत्य पीछे रह जाता है। इसलिए बुद्धपुरुष का स्वाभाविक जीवन मौन होता है। गंगासती ने कहा है, 'समजीने रहेवुं चूप।' गंगासती बड़ी अध्यात्मवादी महिला है। रोज़ नई साडी पहनकर निकलती है। साडी याने वस्त्र नहीं, वृत्ति। जिसस ने तो केवल सूत्र कहा कि रोज़ नए कपड़े पहनो, रोज़ नए विचार पहनो। हमारी गंगासती रोज़ नया विचार पहनकर समढियाळा के आंगन में एकतारा बजाती थी।

चुप रहनेवाले मुख पर हाथ रख देते हैं, उसके दो अर्थ है। निंदा करे तब चुप रहो और उसे भी प्रेम करो। दूसरों के पात्र में अनाज नहीं पीसा जाता; हमारे अपने पात्र में पीसते हैं। हमारे वैरागी, मार्गी बावाओं आटा मांगने जाते हैं। साधुओं ने किसी भी वर्ण का विचार ही नहीं किया। जिसके आंगन में खड़ा है वो कौन है वो कभी देखा ही नहीं कि हिन्दु है, मुसलमान है, पारसी है, जैन है, देवीपूजक है कि कोली है। अठारह ज्ञाति को एक पात्र में इकठ्ठा कर ले उसका नाम मार्गी।

दीक्षा ले तब चंदन लगाकर बहुत शीतलता मिलती है कि अच्छे मकान में रहने मिलेगा; नई-नई गाडीओं में बैठने को मिलेगा। प्रारंभ में तो अच्छा लगे लेकिन समय जाए तब पता चले कि इसमें तो कुछ नहीं है! प्रारंभ में तो दीक्षा में ब्रह्म, वैराग्य, अद्वैत, निरपेक्ष का सोचे लेकिन अनुभव करे तब कठिन लगता है। संयम के बिना जाए तो अभिमान के, कामना के विकाररूपी कुत्ते काटते हैं। खुद के कुए का पानी पीओ; यहां-वहां मत जाओ। सेवा के नाम, प्रलोभनों के नाम, चमत्कारों के नाम आपकी मानसिकता बदल दे वो ठीक नहीं। सबका स्वागत है, लेकिन इरादा सबका मलिन है। आदिवासी भोले लोगों को पूछो कि आपका धर्मपरिवर्तन करके क्यों दूसरे धर्म में चले गये? तो बोले, हमारे बड़े ने भस्म दी तो ताव उतर गया! किसी के पास भजन ही नहीं है तो भस्म क्या होगी? लेकिन गोलियां शर्दी-खांसी की पीसकर दे देते हैं वो आपका ताव उतार ही देती है! लगता ऐसा है कि इस धर्म

ने हमारा ताव उतार दिया और फिर धर्मपरिवर्तन! कोई सेवा करे तो लाभ ले लो; उसकी होस्पिटल में दाखिल होना लेकिन ठीक हो जाओ तब घर चले जाओ। इमानदार हो तो कहे, सनातन धर्म में चले जाओ, वैदिक धर्म में चले जाओ। मुझे मेरा धर्म प्रिय है। मैं किसी को धर्मपरिवर्तन करवाने नहीं आया हूं। मेरा प्रेम बिना परिवर्तन करवाए हैं। भूले-भटके हुए को मार्गी रास्ता तो दिखाता है ना! इसलिए कोई गए हो तो मेरी आवाज़ सुनकर वापस चले आओ।

शुभ हो उसकी सराहना किए बिना नहीं रह सकता। मुझे कल गोविंद काका ने बहुत अच्छी बात बताई कि आदिवासी विस्तार के तीन सौ बीस गांव में वो और उसकी टीम हनुमानजी के मंदिर आठ लाख रुपये में बना रहे हैं। उसमें से एक गांव की प्रतिष्ठा करने मैं कल गया था। लेकिन पहले दिन की कथा सुनकर उन्हों ने संकल्प किया कि तीन सौ बीस गांव में हनुमानजी के पूजारी आदिवासी की बहन-बेटी होगी। ये बड़ा मेसेज जाएगा साहब! कल मैंने भी मेरे साथ उस बेटियों को रखकर आरती करवाई।

बाप! गुमराह हुए हो तो मेरी आवाज़ सुनना। किसी का बुरा करने की बात नहीं है। मेरा तो सबके प्रति समभाव रहे। लेकिन जो मलिन प्रवृत्तियां हो रही है वो ठीक नहीं है। सावधान रहे। आदिवासी प्रजा थोड़ी व्यसनमुक्त भी रहे ऐसी इच्छा है। शिकारवृत्ति भी छोड़ दे। कहीं कागभुशुंडि, शुकदेव न मारे जाए! कहीं शांति के दूत कबूतर न मर जाए! इसलिए मैं पुकार कर रहा हूं।

घर वापस आ जाओ। सनातन धर्म हमारा घराना है। किसी का निषेध नहीं करना है लेकिन भटक गये हो तो वापस आ जाओ। वो पुराना चित्त बदलो। चीज़ें नई चाहिए, चित्त वही का वही! आध्यात्मिक व्यक्ति वो है जो रोज़ नया है। इसलिए जिसस ने वक्तव्य दिया और गंगासती ने चरितार्थ किया।

मरने आवीने धननो ढगलो करे रे,
भले होय मोटो भूप रे।

कोई अन्यथा अर्थ न करे, लेकिन मुझे ईसु बहुत अच्छे लगते हैं। बहुत मासूम है ईसु। मैंने तो उसके स्थान में जाकर कथा कही है, लेकिन फिर परंपरा में भोली प्रजा के साथ धोखा करते हैं तब सावधान करना व्यासपीठ का कर्तव्य है। सनातन धर्मियों को सबका स्वीकार करना चाहिए। हमने थोड़ा दूर किया इसका ये नतीजा आया है! धर्माचार्य कोई गये ही नहीं! बड़े-बड़े मंदिर बनाने में जो खर्च होता है उनमें से एक हजार गांव के मंदिर बनवा सकते हैं। मंदिर बनने चाहिए; मैं उसका विरोधी नहीं हूं लेकिन छोटा रखो ना! बाहर के धर्मांतरण करवाए तो इसमें क्या धोखा करें? खुद के ही करवाते हैं! सबको अपना पंथ बनाना है! और सनातम धर्म में छेद डाल रहे हैं और कहते हैं, राम-कृष्ण तो हुए ही नहीं! तेरे पास शास्त्र प्रमाण नहीं है; अनुभव प्रमाण, अंतःकरण प्रमाण भी नहीं हैं क्योंकि तेरा अंतःकरण ही मलिन है! और भजन प्रमाण तो है ही नहीं! आसपास की बस्तीवालों को ये काम करना चाहिए। अभी बहुत देर नहीं हुई हैं। आपको लगता है कि उन्हों ने सेवा की आपकी, वो ठीक है लेकिन ठीक होने पर वापस चले आओ। आपको सावधान होना पड़ेगा।

हम सब का कर्तव्य है ये। सब हमारे है लेकिन जो हमारा है उसको पकड़े रखो। क्या कमी है अपने धर्म में कि दूसरी जगह जाना पड़े? उदार-सनातन वैदिक धर्म जैसा कौन धर्म है? सनातन धर्म दुहाई देनेवाले भी, कई छोटी-छोटी पगदंडीवाले भी अपने मलिन इरादें सिद्ध करने की चेष्टा में है! तो सबको पुकार रहा हूं कि सावधान रहना। सबके प्रलोभन प्रारंभ में अच्छे लगते हैं लेकिन फिर बाद में पता चलता है।

तो बाप! भौतिकवादी का लक्षण है, खुद नहीं बदलना है, चीज़ें बदलनी है; गुरु बदलना है; धरम बदलना है; मंत्र बदलना है। क्योंकि पुराना चित्त चीज़-वस्तु नई चाहता है। आध्यात्मिक वो है जिसे चीज़-वस्तु से कोई लेना-देना नहीं है; वो रोज़ अपना चित्त नया बनाता है। नया चित्त याने फिर गंगासती को याद करूं, 'चित्तनी वृत्ति जेनी रहे सदा निर्मळ।' निर्मल चित्त नया चित्त है।

तो चार प्रकार के पिता होते हैं। एक, रजोगुणप्रधान पिता जो प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति करता है। और एक उम्र होने के बाद भी आदमी प्रवृत्तिमय रहे ये अच्छा नहीं है। भारतीय विचारधारा ने सुंदर विभाग कर दिए कि पचीस साल तक तू पढ़ाई कर, संयम रख। पचीस से पचास तक तू शादी करके जीवन का रस ले। लेकिन पचास के बाद धीरे-धीर तेरा मुख वन की ओर हो जाए। पचास से पचहत्तर तू वानप्रस्थ रहे और पचहत्तर के बाद फल पक जाए तब संन्यास ले। ये सुंदर व्यवस्था हमारी सभ्यता ने

की। कई लोग तो 'प्रवृत्ति ही हमारी पूजा।' ऐसे सूत्र निकालते हैं! संसार में से निकाले जाए तो कहीं ट्रस्टी बनकर बैठते हैं! रजोगुणी बाप सेवा के नाम पर सिमरन भूल जाता है। तो कोई पिता होते हैं रजोगुणी। बच्चें लाख समजाए फिर भी प्रवृत्ति न छोड़े!

कोट रे कायाना बेली खळभळ्या,
काळे चांपी दीधी सुरंगो।
खांगा रे थया कोटना कांगरा,
डूकी गयां उधमाती अंगो।

रजोगुणी बाप अपनी फैलाई दुनिया को सिमट नहीं सकता। मैंने कई वडीलों को देखा है जो आखरी सांस तक प्रवृत्त रहते हैं; रजोगुणी हो सकते हैं।

दूसरा, कोई-कोई बाप तमोगुणी होते हैं जो परिवार पर गुस्सा ही करते हैं। भूल न हो तो भी डांटता रहता है। पत्नी पर, माँ-बाप, पुत्र-पुत्रवधू, बच्चें सब पर गुस्सा निकालता है। ये तमोगुणी बाप है। उत्पात मचा दे, गाली-गलोच करे तो समझना ये पिता तमोगुणी है।

तीसरा, कोई-कोई पिता सत्त्वगुणी होते है। ऐसा बाप जो थोड़ा भजन करता हो, थोड़ा सत्कर्म करता हो, आंगन में आये साधु-संत, अतिथि का स्वागत करता हो; परिवारों को ज्यादा डिस्टर्ब न करे ऐसे सत्त्व-तत्त्व में जीए, पुण्यकर्म करता हो। ऐसे सत्त्वगुणी पिता की बात 'भागवत' में आई। हे पिताजी, आप सत्य को सेवो, प्रेम को सेवो, करुणा को सेवो और दुनियादारी का लोकधर्म छोड़ो। साधु को सेवो, कामतृष्णा को दूर करो। पिताजी, दूसरों के गुण और दोष के चिंतन से मुक्त हो जाओ। समाज की सेवा करो और भगवान की कथा सुनने को मिले तो सुनो।

चौथा, कोई-कोई बाप गुणातीत होता है। आप उसका निरीक्षण करो तो लगे कि उसमें तमोगुण नहीं दिखता; रजोगुण नहीं दिखता; नदी की तरह बहता है।

'रामचरितमानस' में गुरुकृपा से कहना चाहूंगा कि रजोगुणी बाप है वालि। तमोगुणी बाप है रावण। 'होई भजन नहिं तामस देहा।' सत्यकेतु और स्वयंभू मनु सत्त्वगुणी पिता है। लेकिन गुणों से पर दो बाप है 'मानस' में। एक शंकर और दूसरे राम।

गुनातीत सचराचर स्वामी।
राम उमा सब अंतरजामी।।

'रुद्राष्टक' में गोस्वामीजी ने गाया-

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी।
सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी।।

शिव गुणातीत है। 'जगतःपितरौ वन्दे।' जगत का मूल पिता भगवान शिव गुणातीत है।

तो पिता का चार गुण आधारित परिचय है। ऐसे 'पितृदेवो भव' की श्रेणी में आज सत्यकेतु का विचार करें। मैंने तो नव ही पितृचरण की वंदना का सोचा लेकिन दो पिता को साथ में याद कर लूं। एक है दक्ष। बहुत रजोगुणी बाप है। दूसरे है पार्वती के पिता हिमालय, जो पूरे सत्त्वगुणी है। बाप हिमालय जैसा होना चाहिए। हिमालय के चार लक्षण है। एक, हिमालच ऊंचा बहुत है। पितृदेव का एक लक्षण है कि बाप बहुत ऊंचा होना चाहिए। और ज्यादातर सबको अपना पिता ऊंचा ही लगता है। बाप नीचा नहीं होना चाहिए लेकिन ऊंचाई मिलने के बाद चलित होने का खतरा बहुत रहता है। मंदिर में धजा ऊंची होती है तो लहराती रहती है। ऊंचाई का ये दोष है, लेकिन हिमालय की ऊंचाई अचलता लेकर बैठी है।

दूसरा, पिता हिमालय जैसा ऊंचा हो और ऊंचाई पकड़ ने के बाद भी कभी स्खलन न हो, कभी हिले ना। इसलिए शब्दोकोश में पर्वत का एक नाम अचल है। जैसे उदयाचल, अस्ताचल, हिमाचल।

तीसरा, आदमी को ऊंचाई मिले और चलित न हो ऐसी प्रतिष्ठा मिल जाए उसके बाद तमोगुण या अहंकार आने का खतरा रहता है लेकिन हिमाचल जैसे बाप का तीसरा लक्षण है शीतलता। शीतलता हो, अचलता हो, ऊंचाई हो वो हिमाचल। चौथा, जो श्वेत हो, उज्ज्वल हो। जिसका पूरा जीवन ऐसा एक पिता 'रामचरितमानस' में हिमाचल है।

रजोगुणी बाप की चर्चा चली तो दक्ष को भी प्रणाम कर लिया मैंने। सत्यकेतु प्रतापभानु का पिता है। तुलसी कहते हैं, विश्व में विख्यात एक कैकेई देश, वहां का राजा सत्यकेतु। अभी मैंने कहा कि ऊंचाई बहुत हो तो धजा फ़हरने लगे लेकिन हिमाचल जैसा बाप हो तो धजा हिले नहीं। लेकिन यहां दूसरा संदर्भ मिलता है। इसका नाम ही है सत्यकेतु। केतु याने धजा। बाप ऐसा होना चाहिए जो जगत में सत्य की धजा लहराता हो। जिसने सत्य को जाना

है, प्रेम को जाना है, करुणा की पहचान की है, वो रजोगुण से सत्त्वगुण में प्रवेश करता है और धीरे-धीरे सबकुछ छोड़कर केवल भजन के लिए 'जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा।' सभी पिताओं को मेरी प्रार्थना कि बाल सफ़ेद हो जाए, एक उम्र हो जाए तब पुत्रों को देते चलो, यदि पितापद निभाना हो तो। तुलसी कहते हैं, सत्यकेतु ने अपने बड़े बेटे को राज दे दिया, 'हरि हित आपु गवन बन कीन्हा।' तो हरि के लिए राज छोड़ना।

तो पिता ऐसा हो, जो देव कहलाने योग्य हो, उसका पितृपक्ष मनाया जाता है, उसके नाम एक लोक बनाया जाता है, पितृयाग आदि। दूसरा मनु एक ऐसा पिता जो नरसृष्टि का प्रथम पिता माना गया हमारी सभ्यता में। डार्विन भले कहे कि हम बंदर से पैदा हुए हैं। नहीं, सुंदर माँ-बाप से हम पैदा हुए हैं। डार्विन का मत अपनी जगह। मनु और शतरूपा का दांपत्य अद्भुत था; वेद भी जिसकी मर्यादा का गायन करे ऐसा दांपत्य था। माँ-बाप ऐसे हो उनके बच्चे कैसे हो! दो बेटे हैं उसमें उत्तानपाद बड़ा बेटा है; दूसरा छोटा पुत्र प्रियव्रत; वेदपुराण जिसकी चर्चा करते हैं। देवहुति नामक उनकी कन्या। उस बेटी के पेट में भगवान कपिल का जन्म हुआ, जिसको चौबीस अवतार में एक माना गया। बहुत काल मनु ने राज किया लेकिन एक दिन ये पितृचरण बैठकर सोचने लगे कि घर में बैठने से वैराग्य नहीं आएगा। उस समय चौथी अवस्था में वन जाते थे। मंदोदरी ने कहा रावण को, हे दशानन, चौथी अवस्था में राजा को वन जाना चाहिए। लेकिन अब देशकाल बदला है। लेकिन भवन में वन बनाना है। इस काल में तो वन में भी भवन बनाते हैं! वन में भवन बनाना इससे बेहतर है जीवन में वनवृत्ति पैदा करनी। उम्र हो तब शरीर को योग्य लगे उतना हल्का-फूल्का खोराक लेना; बच्चों को वात्सल्य से भर देना; ज्यादा उनके जीवन में खलेल न पहुंचाना; हरिस्मरण करना ऐसा जीवन हो तो भवन में वन है। कलिप्रभाव में आज वन में बड़े-बड़े भवन बन गए हैं! होना चाहिए, ठीक है; आलोचना नहीं लेकिन वैराग्य ऐसे न आए। वैराग्य तो गुरु के शब्द पर आए, जिसकी वाणी मोह के अंधेरे का नाश करे।

मनु का आत्मचिंतन शुरू हुआ। रजोगुण और तमोगुण के बीच में रहकर सत्य साधना कठिन तो पड़ती है लेकिन अभ्यास करना चाहिए, भागना नहीं। सबके बीच में रहकर किसी को पता न लगे कि तुम असंग होते जा रहे हो ऐसे हरि भजना। मनु सोचने लगे कि घर में बैठे-बैठे वैराग्य कैसे आएगा?

त्याग न टके वैराग्य विना,
करीए कोटि उपाय जी।

मेरे शब्दकोश का प्यारा शब्द है 'वैराग्य।'

बदलाई बहु गयो छुं, तमने मळ्या पछी।
मारो मटी गयो छुं, तमने मळ्या पछी।
- गनी दहींवाला

एक माणसने मींढो गणवा,
भेगी थई छे नात कबीरा।
- चंद्रेश मकवाणा

मनु महाराज सोच रहे हैं कि घर में बैठकर वैराग्य नहीं आए। आप मुझे पूछो कि वैराग्य आया उसका प्रमाण क्या? तो तीन प्रमाण है। एक, धन में कृपणता छूटने लगे तो समझना वैराग्य बढ़ रहा है। संसार के पदार्थ में रुचि कम होने लगे तब समझो, वैराग्य आ गया। दूसरा, आप क्रोध करने के योग्य है क्योंकि ऐसी घटना घट रही है आपके सामने फिर भी आपका क्रोध अपने आप कम होने लगे तब समझना, वैराग्य बढ़ रहा है। जिस दिन जगतभर की कामनाएं क्षीण होने लगे तब समझो, वैराग्य दौड़ रहा है।

'गीता' में लिखा है कामना, विकृतियां, विचार काटते हैं हमें कुत्ते की तरह। कामरूपी विकार पहले इन्द्रियों में आता है। हमारी आंख बिगड़ने लगे। वाणी बिगड़े। हाथ ऊंचे-नीचे हो स्पर्श करने के लिए। हमारे कदम गलत जगह यात्रा करने के लिए दौड़े तब काम प्रवेश करता है इन्द्रियों से। कामना शरीर में जगती है फिर उस व्यक्ति की चेष्टाएं, मुद्राएं बदलने लगे। फिर वो विकार मन में चला जाता है। शरीर में होता है तब दिखता है। लेकिन मन में चला जाता है तब निकालना मुश्किल पड़ जाता है। मन में गए विकार को आदमी योग-साधना के द्वारा कम कर सकता है। शरीर में रहा काम संयम से कम कर सकते हैं। काम मन में घुस जाए तब बड़े-बड़े विश्वामित्र को भी पतन की ओर ले जाता है क्योंकि मन में छिपा है। राम के भजन बिना कामना कम नहीं होगी। जिसका भजन बढ़ता है, कामना उससे दूर भागने लगती है। तो मन में बसे काम

योगाभ्यास के द्वारा या भजनानंदीओं के भजन के द्वारा कम होने लगता है। काम का तीसरा स्थान है बुद्धि। फिर वो बुद्धि में जाता है; जब बुद्धि मोहर मार दे तब उसे निकालना कठिन है।

तीसरा, शरीर सुंदर हो फिर भी भजन इतना प्रबल हो कि तुम्हें पतन से बचाए रखे। तो मनु सोचते हैं, मेरी चौथी अवस्था आ गई, वैराग्य नहीं आया। एक पीड़ा हुई कि भगवान के भजन बिना ही ये जीवन पूरा हो जाएगा? पुत्रों को बुलाकर कहा कि अब राज आप संभालो और संतान भी ऐसे थे कि पिताजी, हम आपके मार्गदर्शन में जीएंगे। एक समय ऐसा आया कि पितृचरण मनु ने अपने पुत्रों को बलात् राज दे दिया। स्त्री को लेकर कोई संन्यास ले सकता है? हिंमत हो तो ऐसा संन्यास लो कि धर्मपत्नी के साथ निकल जाओ और ऐसा जीवन जीओ कि ब्राह्मणों को आपका बालक बनने की ईच्छा हो। नूतन संन्यास की फ़कीरी मनु की देन है।

भजनानंदी साधु दिन में गृहस्थ होता है और रात को संन्यासी होता है। तथाकथित साधु दिन में संन्यासी होता है और रात में गृहस्थ होता है! इतना मौलिक फर्क़ है। हमारे गृहस्थ साधुओं की ये परंपरा रही। तुलसी ने कहा, रास्ते पर मनु और शतरूपा जा रहे हैं। संन्यास में नाम बदल जाते हैं। इस नूतन संन्यास में नाम बदले हैं तुलसी ने, मनु और शतरूपा के बदले ज्ञान और भक्ति। मनु का नाम ज्ञानदेव और शतरूपा का नाम भक्तिदेवी। मारग सुंदर लग रहा है ऐसा संन्यास था। दुनिया तो आपकी दीक्षा देखे लेकिन त्यागी और वैरागी संत मिलने आए तब समझना, आपका नूतन संन्यास है। मनु और शतरूपा जा रहे थे तब नैमिषारण्य में साधना करनेवाले ऋषिमुनि दौड़ रहे थे कि राजर्षि दंपती निकले हैं।

यात्रा आगे बढ़ी है। श्रेष्ठतीर्थ नैमिष गोमती नदी के तट पर था जहां अठासी ऋषिमुनियों के सामने पौराणिक कथाएं चलती थीं। नैमिष कथा का घराना है; कैलास कथा का घराना है; तीरथराज भी कथा का घराना है। और आपको तकलीफ़ न हो तो तलगाजरडा कथा का घराना है। ऋषिमुनियों ने राजर्षि दंपती को यात्रा करवाई। आने के बाद धेनुमती नदी के निर्मल जल में स्नान किया। ये संन्यास कितना प्यारा है! पति-पत्नी करबद्ध खड़े हैं और ऋषिमुनियों को कहा, हमें कोई मंत्र दो, जिसकी हम आराधना करें। द्वादश अक्षर मंत्र दिया।

तो मनु और शतरूपा ने एक मंत्र लिया। पति-पत्नी का एक ही मंत्र हो तो धन्यता ज्यादा हमारे आंगन में आकर खड़ी रहती है। मंत्र का संस्कृत में एक अर्थ है विचार। पति-पत्नी का एक विचार हो वो गृहस्थ जीवन धन्य हो। मंत्र किस भाव से करना उसकी फोर्म्यूला नहीं; प्रेमवत् करो, भले जप थोड़े कम हो; कोई गणना की ज़रूरत नहीं है। वासुदेव के चरणकमल में दंपती का मन लगा। बड़ी तपस्या का वर्णन मिलता है इस पितृचरण की वंदना में। तपक्षीण शरीर हो गया था। उस काल में ऐसा तप करते थे; इस काल में इतनी ज़रूरत नहीं है। दोनों के शरीर केवल अस्थिमात्र बन गए हैं! मनु-शतरूपा का शरीर क्षीण हो गया फिर भी धैर्य छोड़ा नहीं। आकाशवाणी हुई उसी समय, 'हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए।' शरीर तंदुरस्त हो गए। परमात्मा को कहा, हमें आपके प्रत्यक्ष दर्शन चाहिए।

राम और जानकी प्रगट हुए, स्तुति की। भगवान ने कहा, मांगो। तब मनु ने कहा, हमें दूसरा जन्म चाहिए और हम दोनों पति-पत्नी ही रहे और उस समय हमारे गृहस्थ जीवन में आपके समान पुत्र की प्राप्ति हो जाए। भगवान इतने भाव में आ गए कि 'एवमस्तु' कह दिया। फिर प्रभु को लगा कि मेरे समान तो कोई है ही नहीं! राजन्, आप अयोध्या में दशरथ बनेंगे, कौशल्या बनेगी शतरूपा; उसी समय मैं आपके घर पुत्र बनकर आऊंगा और आपका मनोरथ पूर्ण करूंगा। दंपती प्रसन्न हुए और जाते समय प्रभु शतरूपाजी से पूछते हैं, तुम्हें बिलग से कुछ मांगना है? वो बोली, मेरे समझदार पति ने जो बर मांगा वो मुझे प्रिय लगा। मेरे पति ने पुत्ररूप में आपको मांगा, मुझे भी यही चाहिए लेकिन इतना विवेक देना कि जब पुत्र रूप में आओ तब तुम्हारे भक्तों का जो विवेक हो, रीत-रसम हो वो बनी रहे। माता का अलौकिक विवेक देखकर परमात्मा प्रसन्न हुए। मनु जैसे पितृ की बात कर रहे थे, जो पितृओं का पितृ परमात्मा को अपने पितृ बना दिया था।

तो पितृचरण की आगे की वंदना में महाराज दशरथ है। फिर महाराज जनक, उसके बाद महाराज वालि, बीच में जटायु और आखिर में रावण। इस सभी पितृचरण की वंदना पितृपक्ष में करनी है। थोड़ा कथा का

क्रम ले लूं। राम के बारे में, रामकथा के बारे में भरद्वाजजी ने प्रश्न किया लेकिन याज्ञवल्क्य ने शिवकथा से प्रारंभ किया। एक बार के त्रेतायुग में भगवान शिव दक्षकन्या सती को लेकर कुंभज ऋषि के आश्रम में भगवद्कथा श्रवण हेतु गए। भगवान शिव और सती पधारे तो कुंभज ऋषि ने उनकी पूजा की। हमारे रामकथा जगत के बहुत बड़े तेजस्वी नक्षत्र पंडित रामकिंकरजी महाराज इस प्रसंग की तात्त्विक संगति बताते हुए कहते हैं कि शिव ने कथा सुनी लेकिन सती ने गलत अर्थ किया कि ये जिसका जन्म घड़े से हुआ हो वो समुद्र जैसी कथा कैसे सुनाएगा? सती के मन में बौद्धिकता की प्रधानता होने के कारण गलत अर्थ कर दिया। शिवजी ने कथा सुख से सुनी। भगवान शिव ने कुंभज को अधिकारी समझकर भक्ति का वरदान दिया।

दक्षकन्या के साथ शिव लौट रहे हैं; दंडकारण्य से गुज़रे। वर्तमान त्रेतायुग के राम की नरलीला चल रही थी। सीता के अपहरण के कारण भगवान विरह में जानकी की खोज कर रहे थे। अतंर्यामी शिव जान गये कि जिसकी कथा हमने सुनी वो मेरा परमात्मा सच्चिदानंद लीला कर रहे हैं; मन ही मन प्रणाम किया। सती के मन में संदेह का जन्म हुआ। भगवान शिव समझ गए। शिवजी ने समझाने की कोशिश की लेकिन उपदेश नहीं लगा। शिवजी ने कहा, बौद्धिक ढंग से परीक्षा कर लो। वो मनुष्य है कि परमात्मा ये अपने ढंग से निर्णय करके बताओ। मेरी व्यासपीठ कहती रही कि ब्रह्म परीक्षा का विषय है ही नहीं; ये केवल प्रतीक्षा का विषय है।

शिवजी बैठकर हरिनाम जपने लगे। सती ने सीता का रूप ले लिया। राम-लक्ष्मण जा रहे थे तो सामने से आई। सती पकड़ी गई। राम ने परिचय दिया और पूछा, आप अकेले क्यों है? भगवान शंकर कहां है? सती लौट गई। डरते-डरते शिव के पास आई। मुस्कुराते हुए शिवजी ने कुशलता पूछी और कहा, परीक्षा हो गई राम की? सती झूठ बोली कि मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। शिवजी ने ध्यान में देखा तो सब जान गए। राम का स्मरण किया और निर्णय किया कि सती का ये शरीर जब तक होगा तब तक मेरा और उसका कोई संबंध नहीं। विश्वनाथ कैलास पहुंचे और सहज रूप का अनुसंधान करके भवन के बाहर समाधि में बैठ गए।

सत्तासी हजार साल के बाद शिव जागृत होते हैं। सन्मुख आसन देकर सती को रसप्रद कथा सुनाते हैं। उसी समय दक्ष महाराज के यज्ञ की बात आती है। सती जिद्द करके जाती है और शिव का अपमान देखकर यज्ञ में देह विलीन कर देती है। दूसरा जन्म हिमालय के घर पार्वती के रूप में हुआ। नारदजी शिव को प्राप्त करने के लिए तप करने को कहते हैं। तप की फलश्रुति भी मिल गई और भगवान शंकर के पास आकर प्रभु ने कहा, आप पार्वती से ब्याह करो। सप्तऋषि परीक्षा करने गए। शिव को फिर समाधि लग गई। कामदेव आता है। शिव के मन में थोड़ा क्षोभ पैदा करता है और आखिर में शिव के क्रोध में भस्म होता है। काम की पत्नी रति रुदन करती आई और शिव ने वरदान दिया कि कृष्णावतार में तेरे पति कृष्ण का पुत्र बनकर तुम्हें मिलेगा। स्वार्थी देवता आकर शिव के पास ब्याह की बात रखते हैं और प्रभु का आदेश होने के कारण भगवान शंकर शादी करने के लिए तैयार होते हैं। उनकी शादी कल करवाएंगे।

चार प्रकार के पिता होते हैं। एक, रजोगुणप्रधान पिता जो प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति करता है। रजोगुणी बाप सेवा के नाम पर सिमरन भूल जाता है। दूसरा, कोई-कोई बाप तमोगुणी होते हैं जो परिवार पर गुस्सा ही करते हैं। पत्नी पर, माँ-बाप, पुत्र-पुत्रवधू, बच्चें सब पर गुस्सा निकालता है। तीसरा, कोई-कोई पिता सत्त्वगुणी होते हैं। ऐसा बाप जो थोड़ा भजन करता हो, थोड़ा सत्कर्म करता हो, आंगन में आये साधु-संत, अतिथि का स्वागत करता हो; पुण्यकर्म करता हो। चौथा, कोई-कोई बाप गुणातीत होता है। आप उसका निरीक्षण करो तो लगे कि उसमें तमोगुण नहीं दिखता; रजोगुण नहीं दिखता; नदी की तरह बहता है।

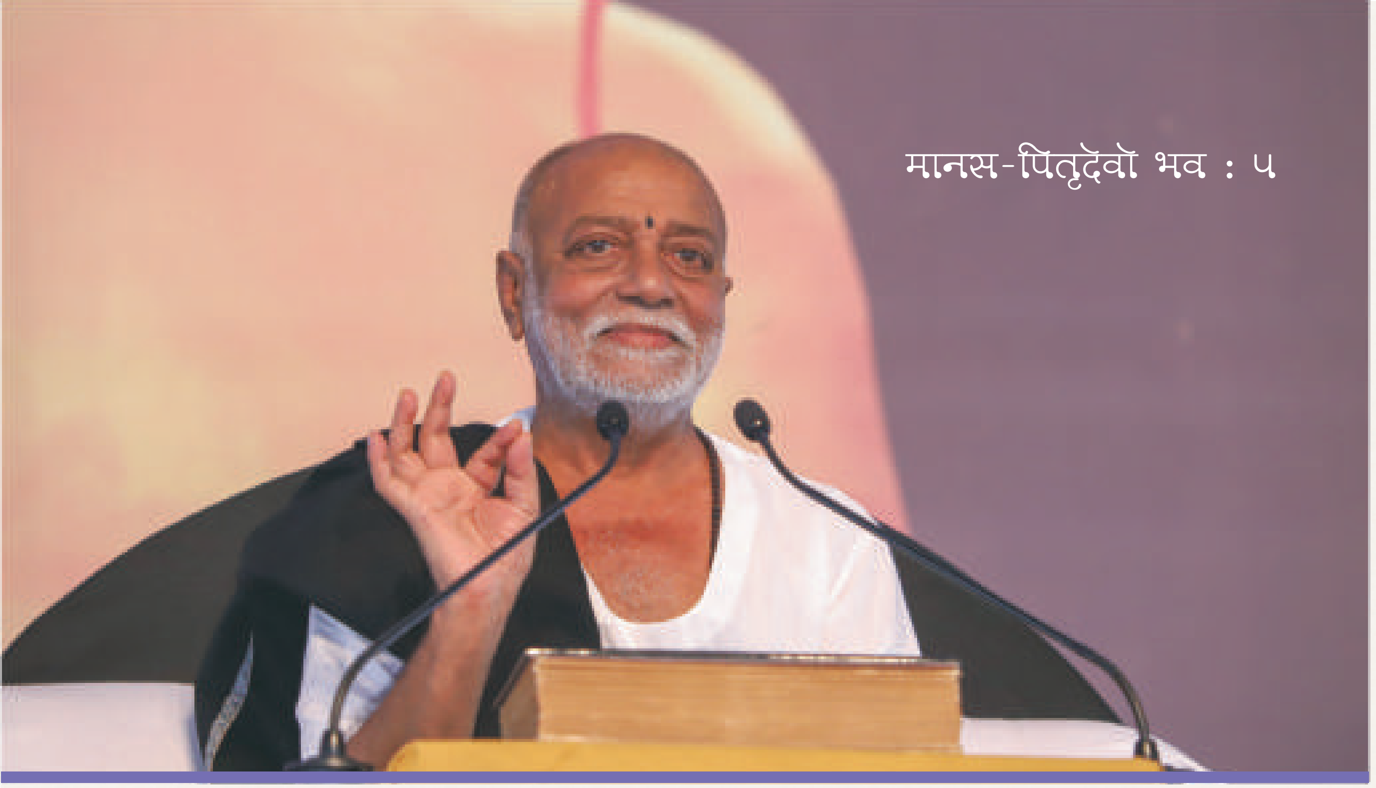

‘रामचरितमानस’ सत्य, प्रेम, करुणा की शाश्वत-सनातनी यात्रा का नाम है

‘मानस-पितृदेवो भव’, औपनिषदीय विचारों को केन्द्र में रखते हुए हम ‘मानस’ के आधार पर हमारे आंतर जीवन के विश्राम और विकास के लिए कुछ संवाद कर रहे हैं। आगे बढ़ें। तुलसीदासजी ने कृपा की याचना दस लोगों से की। और ‘मानस’ के मारग पर चलनेवालें तत्त्वत: तो हम सब एक है आखिर में तो; फिर भी दस लोगों से कृपा की मांग करनी चाहिए, ऐसा गोस्वामीजी का संकेत है। और मैं ये भी स्पष्ट कर दूं कि कृपा और करुणा अंततोगत्वा तत्त्वत: एक ही है। किसी विशेष संदर्भ में एक ही ग्रंथ में, एक व्यक्ति के मुख से, एक ही व्याख्यान में कृपा और करुणा दोनों का पर्याय के रूप में भी उपयोग किया हो, हो सकता है। फिर भी दोनों में बहुत अंतर है। आकाश के दो सितारे हम देखते हैं अपनी आंखों से तो बहुत निकट दिखते हैं। लेकिन तत्त्वत: वो इतने करीब नहीं है। कितने-कितने प्रकाशवर्ष की इनकी दूरी है! शब्द भी तो आकाश की संतान है। इसलिए एक ही अर्थ में जब दो शब्द का प्रयोग किया जाए तब भी उनमें बहुत अंतर भी है।

मुझे बहुत-से प्रश्न पूछे जा रहे हैं। ‘बापू, कुछ दिनों से आपने जो ये गार्गी-मार्गी शुरू किया है, तत्त्वत: है क्या?’ अब तो उस पर बहुत बोला जाएगा और अपने नाम से भी बोला जाएगा, संभावना है; बहुत-सी रचनाएं होगी; होनी चाहिए। बहुत-से लेख लिखे जाएंगे। फूल तो एक तालाब में खिलता है, महक तो चारों दिशा में चली जाती है। ये होना चाहिए। महक को कौन रोक पायेगा? मुझे कल एक चिठ्ठी मिली उसमें भी किसी ने पूछा, ‘बापू, ये मार्गी और गार्गी क्या है?’ गार्गी एक वेद की ऋषिका है; एक ऋषिनारी है; महान प्रज्ञावान नारी है। मैं इतना ज़रूर कहूं कि गार्गी ये वीणा है; मार्गी ये वाणी है। इतना अंतर है। हमारे यहां सरस्वती के हाथ में वेद भी है, वीणा भी है। सरस्वती वेद-गायन करती है। गार्गी वो ऊंचाई है जहां वीणा बजती है; बहुत मधुर बजती है।

तो पहले तो नये श्रोताओं के लिए अथवा तो जो अनभिज्ञ हो उसको मैं कह दूं कि गार्गी एक वेद की ऋषिनारी है, ऋषिमहिला है, जिसको वैदिक परंपरा का प्रतीक समझकर तलगाजरडा उस पर बोल रहा है। गार्गी वेदवाणी है। मार्गी लोकवाणी है। गार्गी श्लोकवाणी है। मार्गी लोकवाणी है। अथवा तो पितृ की चर्चा चल रही है तो कहूं, गार्गी देवयान है; मार्गी पितृयान है। मार्गी को सब बापू कहते हैं; वहां पिता का संकेत है। ये पितृयान का मारग है। मैंने कभी कहा था, गार्गी ये ग्रंथप्रधान विचार है; मार्गी ये पंथप्रधान विचार है। गार्गी का गमन गगन में है; मार्गी का गमन धरती पर है। गार्गी देव की-देवी की महिमा गाती है। वेदों में देवों की बहुत महिमा है। कितने सूक्त मिलते हैं देवता के! कोई विषमता न समझे। अवश्य, मैं कहूंगा थोड़ा श्रवण के कारण, संतों को सुनने के कारण, ग्रंथ अवलोकन के कारण और भजन प्रभाव से कहूंगा कि गार्गी सदैव देव की महिमा करती है; मार्गी सदैव मनुष्य की महिमा करता है। अध्यात्म रामायण का राम देव है, लेकिन वाल्मीकि रामायण का राम मनुष्य है। वेद में राम का जो उल्लेख मिला प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष वो परमदेव है। लेकिन तुलसी का राम ‘लीन्ह मनुज अवतार।’ बंगाल-पूर्वांचल में एक बहुत बड़े संत हुए भक्त कवि चंडीदास, जिसने बेंगोली भाषा में बहुत सुंदर पद प्रस्तुत किये। विश्व के सामने मार्गी रहा। हवे तो बधा मने मार्गी ज देखाय छे! एक समये बधा मने रूखड देखाता’ता! लेकिन रूखड-मार्गी सब एक पंथ के मार्गी है, यात्री है।

ज्यां ज्यां नजर मारी ठरे यादी भरी त्यां आपनी।
ज्यां ज्यां चमन, ज्यां ज्यां गुलो त्यां त्यां निशानी आपनी।
- कलापी

‘सबार उपर मानुष।’ आ छे चंडीदास। सबसे उपर मनुष्य है। उसके उपर कोई नहीं। सबसे उपर मनुष्य है। मनुष्य की महिमा हो। कहने का मेरा मतलब है, गार्गी और मार्गी ये दोनों की आवश्यकता है। किसी की आलोचना मत करना। हमारे दोनों पैरों से चला जाता है। दक्षिण पैर गार्गी है; वाम पैर मार्गी है। दक्षिण पूरा वेद का अध्ययन करता है, कराता है, वेद का संरक्षण करता है। और हमारे वैरागी साधुओं में ये एक ये वाममार्गी बावा है; वाममार्गी तंत्रवाला नहीं; याद रखना, प्लीज़। मैं बहुत क्लीयर करना चाहूंगा। ये तंत्र का वाममार्गी बावा कितने ‘म’कार का भक्षण करता है! मदिरा पीता है! मांस खाता है! जिसकी टेढ़ी चाल है। गार्गी मंत्रप्रधान धारा है। यस, मार्गी हरिनाम प्रधान धारा है। और उसके नाम की प्रधानता ने नाम को महामंत्र बना दिया। जिसमें मनुष्यता की महिमा हो वो मार्गी है। जिसमें देवता की महिमा हो वो खराब नहीं है। देवता की महिमा हो वो गार्गी है। यस, दो पैरों से गति होती है। किसी की उपेक्षा मत करना।

तो कितने-कितने सूक्त वेदों में मिलेंगे। सबके पास कृपा-कृपा-कृपा की मांग होती है। तो कृपा और करुणा तत्त्वत: अंततोगत्वा एक है। लेकिन अंतर भी बहुत है। दो सितारें करीब दिखते हैं लेकिन हजारों प्रकाशवर्ष की दूरी है। तो ऋषि एक ही शब्दब्रह्म के लिए दो शब्द क्यों प्रयुक्त करता है? कृपा और करुणा क्यों? मैं वो कुबूल करता हूं कि कभी-कभी वो दोनों एक ही जगह एक ही प्रसंग में एक ही व्यक्ति के मुख से बुलवाया गया; एक ही व्यक्ति के पास उसकी याचना की गई है। लेकिन बहुधा, बहुधा मीन्स नब्बे प्रतिशत ‘कृपा’ शब्द आपको जहां-जहां मिलेगा वो कृपा केवल मांगने से मिलती है। सबने मांगी, ‘कृपा करो रघुबीर।’ कृपा मांगो तब मिले। संकेत करता है कोई।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

संकेत करना पड़ता है; आदेश देना पड़ता है; विनय करना पड़ता है। हमें कृपा दो। मांगना पड़ता है। हां, आप खोजे इन से पहले मैं ही कह दूं, एक जगह ऐसी भी है, जहां कृपा मांगी नहीं गई।

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं।

मांगा नहीं, दी गई। मैं मानता हूं कि करुणा मांगी नहीं जाती, करुणा सामनेवाला करता रहता है। तुम मांगो न मांगो, करुणा होती रहती है। सूरज को अर्घ्य चढ़ाओ, न चढ़ाओ सूरज तुम्हारे आंगन तक आता रहता है। ये करुणा है, जो होती रहती है। एक दिन मैंने कहा था, कृपा आंख है, करुणा आंसू। लेकिन कहीं-कहीं दोनों एक भी है। हम रोज़ शुरूआत में ये मांग ही तो करते हैं, ‘कारुण्यरूपं करुणाकरं’ हम पर करुणा करो। वहां पर मांग भी है। लेकिन मेरी अनुभूति में मैं करुणा उसको मानूं कि जो होती रहती है; निरंतर होती रहती है। कृपा की याचना हम करते रहते हैं। करनी चाहिए, चलो। तुलसी ने हम सबको दस लोगों से कृपा की याचना करने को कहा है। इसी मुद्दे पर मैं आगे बढ़ गया। करुणा भी कई लोगों ने ‘मानस’ में मांगी, ‘अब नाथ करी करुना बिलोकहु...’ बालि करुणा की मांग कर रहा है। जहां मैं कह रहा हूं, करुणा होने लगती है। तो वहां दोनों शब्द फिर एक हो जाते हैं। तो ये अपवाद है।

तो कहीं एक-एक जैसा लगेगा लेकिन अनुभूति के विश्व में उसमें बहुत अंतर है; बहुत अंतर है। जब जानकीजी चित्रकूट में अयोध्या से आई माताएं, अपनी सासों को मिलती है, तो वो आर्शीवाद देती है। जानकी ने कुछ मांगा नहीं; वहां तुलसी ने लिखा है, ‘तेहि अवसर करुनामहि छाई।’ की नहीं गई, बह गई, छा गई। एक ही दृश्य खड़ा हो गया। चित्रकूट में करुणा के सिवा कुछ नहीं है बस। कृपा कुएं की सिंचाई है; करुणा नभ की बारिस है। कृपा हेन्ड पंप है; करुणा ट्यूबवेल है। फुआरें निकलते हैं, निकलते हैं, निकलते हैं। तो तुलसी हम जैसे जीवों के लिए संकेत करते हैं कि आदमियों दस लोगों के सामने कृपा की याचना करे तो कोई बुरी वस्तु नहीं है। ये दस लोगों में एक पितृ से कृपा करने की मांग की छूट दी है। ये है ‘मानस-पितृदेवो भव।’

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब।।

'मानस' के 'बालकांड' का वंदना प्रकरण। नगद दस गिनाए। 'मानस' अद्‌भुत रहस्य का ग्रंथ है साहब! हां, बिना गुरुकृपा नहीं समझ सकते साहब! भाषांतर हो सकता है। 'मानस' केवल भाषांतर पर भार नहीं देता; भावांतर कर देता है। कामभाव से रामभाव में पहुंचा देता है। क्रोधभाव से बोधभाव में पहुंचा देता है। लोभभाव से क्षोभभाव में पहुंचा देता है। पूरा भावांतर, भूमिका का अंतर कर देता है। इसलिए रहस्यपूर्ण ग्रंथ है। चाहिए गुरुकृपा। केवल भाषांतर से कैसे काम चलेगा? केवल छोटे-बड़े मनघड़ित अर्थों से कैसे काम चलेगा? अर्थ शब्दोकोश से नहीं निकलेगा, जीवन कोश से निकलता है। जीवन का एक शब्दकोश। लाइफ़ एक सब से बड़ी ऐन्सायक्लोपीडिया है। मानस माने हृदय; ये शब्दकोश केवल बौद्धिक शब्दकोश नहीं; ये हृदयकोश है।

तो दस से कृपा की याचना तुलसी ने करवाई। और दस में सब आ जाता है। फिर इसमें आप शाखाएं निकालो विशेष स्पष्ट करने के लिए तो ये अवकाश है। सबसे पहले तुलसी देवताओं से कृपा मांगते हैं। मुझे 'रामचरितमानस' का सर्जन करना है; मुझे 'स्वान्तयः सुखाय' गाना है; भाषाबद्ध करना है। और केवल देव ही कृपा करे ऐसा नहीं; दनुज भी कृपा कर सकता है। अच्छाई तो सबमें होती है। हम दनुजों को दूर रखते हैं। उसी में भी ईश्वर है। इसलिए तुलसी कोई भेद नहीं करते। 'देव' के बाद तुरंत 'दनुज' शब्द; फिर मनुष्य से याचना की। नरसृष्टि को कहा, मुझ पर कृपा करो।

देव, दनुज, नर, नाग ये सबके शास्त्रों में एक-एक लोक है। चौदह लोक है। इनमें दस लोक तो ये लोग ले जाते थे। देवलोक है हमारे यहां, सुरलोक। दनुजलोक, जिसको पाताललोक कह दो। मृत्युलोक; अपना मनुष्यों का ये है मृत्युलोक। नागलोक; नागलोक भी पाताल में सात पाताल में एक है। नाग के नाम नागलोक। मुनिलोक; ये हिमालय, विध्यांचल ये सब ऋषि-मुनिओं का लोक माना गया है, जहां चिंतन-मनन हुआ है। प्रेत; प्रेतों का एक लोक है। भूतलोक होता है। पितर, पितृओं का लोक। गंधर्वलोक; गंधर्वलोक पूरा एक अर्थ में, स्थूल अर्थ में हिमालय के अगल-बगल में उसका प्रदेश बताया गया है। 'बंदउँ किंनर रजनिचर।' रजनीचर यानी राक्षस भी कह सको। 'रजनीचर' केवल राक्षस के लिए शब्द नहीं। रात को जो निकलते हैं; अथवा तो शब्दकोश में चोर को भी रजनीचर कहते हैं। जो रात को चोरी करने निकलते हैं उसको रजनीचर कहा है। चांद को रजनीचर कहा है, सूर्य को नहीं। सूर्य रजनीचर में नहीं आता। वो दिनचर है; दिनमणि है। चोर को भी कहा जाए अथवा तो पूरा जगत सो गया हो; केवल जगत के लिए जागते-जागते हरि भजन करते हो और दुःखी दुनिया के लिए जिसकी आंख में आंसू हो ऐसा कोई साधु, कोई रूखड़ जगत कल्याण के लिए रात को जागे। 'या निशा सर्वभूतानाम्', 'भगवतगीता' कहती है, जो हमारे लिए रात है वो योगिओं के लिए दिन है। नीतिनभाई वडगामाए कबीर साहेब माटे लख्युं साहेब! कबीरी परंपरा माटे आखुंये पद आव्युं; एमनी श्रद्धा जे होय ते-

साहिब जगने खातर जागे।
छेक भांगती राते जाते ऊंडुं तळियुं तागे।
माळाना मणका आपे छे हळवेथी होंकारो।
साख पूरे छे पाछो धखती धूणीनो अंगारो।
मन माने नहीं एनुं आ कायाना काचा धागे।
साहिब जगने खातर जागे।

आपका एक बड़ा महल है और रात्रि में पहरेदार इधर जाता है, इधर जाता है। सिक्युरिटी आपकी, आपके रक्षक रात्रि के वो धूमते रहे। वो भी रजनीचर। 'रजनीचर' खराब शब्द नहीं है। खराब अर्थ में कि ये जो रात्रि में भटकते हैं। रात्रि में भजन करते हैं वो सच्चे रजनीचर है। भटकते हैं वो आसुरीवृत्ति के रजनीचर है। हां, उसका भी एक लोक है।

तो तुलसीदासजी मांग पितृओं से कर रहे हैं। सात बार 'पितर' शब्द का प्रयोग गोस्वामीजी ने किया है। 'पितु', 'पिता' आदि बहुत बार आया। तो 'मानस-पितृदेवो भव' उसमें जो नव व्यक्तित्व आपके सामने रखने की विनम्र चेष्टा की उसी में महाराज दशरथजी के व्यक्तित्व के बारे में गोस्वामीजी 'बालकांड' में लिखते हैं-

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि।
सरजू सरि कलि कलुष नसावनि।।
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी।
ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी।।
बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची।
कीरति जासु सकल जग माची।।
प्रगटेउँ जहँ रघुपति ससि चारू।
बिस्व सुखद खल कमल तुसारू।।
दसरथ राउ सहित सब रानी।
सुकृत सुमंगल मूरति मानी।।

सबसे पहले गोस्वामीजी ने अयोध्या को प्रणाम किया; सरजू को प्रणाम किया; कलियुग के मेल को धोनेवाली सरजू को नमन किया; नगर के नर-नारीओं को प्रणाम किया; जिन नर-नारीओं पर प्रभु को बहुत ममता थी। माँ कौशल्या को मेरा प्रणाम; उस पूर्व दिशा में रामचंद्ररूपी, रामरूपी चंद्र का उदय 'बिस्व सुखद खल कमल तुसारू।' ऐसा प्रगट हुआ। महाराज दशरथ की पितृवंदना करते हुए पहले तुलसी ने दो शब्द का प्रयोग किया। 'दसरथ राउ सहित सब रानी।' कौशल्या की वंदना की। और कोई रानी रह न जाये इसलिए कहते हैं, सभी रानीओं के साथ दशरथजी को मेरा प्रणाम। सभी रानीओं के साथ जिस दशरथजी की पितृवंदना मैं कर रहा हूं वो कैसे हैं? 'सुकृत सुमंगल मूरति मानी।' महाराज दशरथ एक ऐसे पितृचरण है, जिसके लक्षण दो बताए। कौन पितृचरण? कौन राम जैसे बेटे को जनम दे सके ऐसा बाप? उसका पहला सूत्र यहां मिलता है 'मानस' में। सुकृत, जो पुण्यश्लोक है। जिसका पूरा जीवन पुण्यमय है, ये 'पितृदेवो भव' होने के लायक है।

'सुमंगल', उसकी पूरी मूर्ति, उसका पूरा विग्रह मंगलमय है। उसके हाथ अच्छे काम करते हैं, मंगलमय है; उसकी आंख परनारी को देखती नहीं, मंगलमय है। उसकी ज़बान असत्य बोलती नहीं; मंगलमूर्ति है। और रघुवंश के सभी लक्षण यहां पितृचरण दशरथ की वंदना में जोड़ देते हैं। एक तो पुण्यश्लोक है। दूसरी छबी उसकी मूर्ति, उसका विग्रह सुमंगल है। ऐसे विरल व्यक्तित्व होते हैं कि जिसमें सब सुमंगल है। ऐसा एक पूर्ण पुरुष केवल मिला भगवान कृष्ण।

'सुकृत सुमंगल मूरति मानी।' दशरथजी एक ऐसा विरल व्यक्तित्व, ऐसा पितृदेव, पितृचरण जिसका हाथ भी मंगल, कान भी मंगल, वचन भी मंगल, विचार भी मंगल, व्यवहार भी मंगल क्योंकि वेद जिसका विचार करे वो कोई सामान्य व्यक्ति नहीं। वो पितृचरण है। ऐसा बाप अद्‌भुत है। ऐसा बाप, ऐसा पिता, ऐसा पितृचरण विरल है, जिसको बनाने के बाद बनानेवालों को इज़्ज़त मिले। एक सुंदर मूर्ति कोई बनाए तो पहेले तो ये होता है, इतनी सुंदर मूर्ति बनानेवाला कैसा होगा? 'जिन्हहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता।' जिसका सर्जन करते हैं, स्वयं ब्रह्मा को बड़ाई मिली। दशरथ की मूर्ति बनाने के बाद ब्रह्मा को विशेष इज़्ज़त मिली। कौन है ऐसा? 'महिमा अवधि राम पितु माता।' महिमा की अवधि, महिमा की सीमा आ गई। इससे आगे कोई महिमा नहीं। जिसका निर्माण करके विधाता भी इज़्ज़त प्राप्त करता है; उसको भी ऐसा होता है कि क्या बन गया?

तो बाप! फिर आगे पितृचरण की महिमा; जिसको राम के चरणों में सच्चा प्रेम हो अथवा तो सत्य के चरणों में जिसका प्रेम हो और इसी प्रेम के कारण जो करुणा से भरा हुआ हो ऐसा पितृ धन्य है। ये तीन सूत्र है, जिसको मैं बार-बार दोहरा रहा हूं। बिना सत्य सच्चा प्रेम नहीं होगा। सत्य जब आये उसी में प्रेमधारा बहती है। झूठे आदमी में प्रेमधारा नहीं बहती। झूठे में ज्यादा से ज्यादा मोह बहता है, मूढ़ता बहती है। जो सच्चा है उसमें प्रेमधारा बहती है। सत्य है गंगोत्री, जहां से प्रेम की गंगा बहती है। गोमुख है सत्य। ब्रह्मा का कमंडल सत्य है। लेकिन शिव की जटा से निकला वो प्रेम है और गंगा सागर में समा गई वो उसकी करुणा है। तो ये पूरी यात्रा सत्य-प्रेम-करुणा की यात्रा है।

आप 'रामचरितमानस' में राम का मारगीपना देखो। यात्रा सत्य, प्रेम, करुणा की है। मैं गुरुकृपा से उसको साधार पेश कर सकता हूं। सत्य, प्रेम और करुणा की यात्रा है। ये सूत्र अचानक नहीं आये। भगवान राम प्रयागराज में भरद्वाज ऋषि के आश्रम में गये, रुके, फिर भरद्वाज ऋषि से कहते हैं, महाराज, आप हमें बताओ, हम किस मारग पर चलें? बताओ, हम किस मारग के मारगी बनें? भरद्वाज ऋषि अपने शिष्यों के सामने देखने लगे कि किसको मार्गदर्शन के लिए भेजूं? तो सुनकर पचास आ गये! राम को रास्ता दिखाने का जिसको सौभाग्य मिले, कौन ये लाभ छोड़े? पचासों उठे! कौन मार्गदर्शक आये? शिष्य तो प्रतीक है लेकिन ये पचास माने ये सब ग्रंथ भारतीय वाङ्मय के जो मार्गदर्शक है। भरद्वाज बड़े सयाने महापुरुष है जिसको 'परमारथ पथ परम सुजान' तुलसी ने कहा। ये परमारथ पथ के जानकार है। इसलिए उसने पचास में से चार को चुना। और महात्मा लोग कहते हैं, वो चार वेद थे। राम किस के मारग पर चलते हैं? राम वेद के मारग पर चलते हैं। और वो मारग का नाम है सत्य। क्योंकि वेद सत्य है।

तो भगवान ये चार शिष्यों के बताएं मारग पर चले। ये केवल शिष्य नहीं; ये चार वेद है। गाईड कर रहे हैं राम को। मेरी समझ में, तलगाजरडी दृष्टि में ये मारग है सत्य। अब यात्रा ठीक से 'मानस' की धरा पर देखिए। यमुना के तट पर पहुंचे थोड़े आगे जाते-जाते और भगवान वहीं से ये चार शिष्यों को, गुहराज को सबको बिदा कर देते हैं। क्योंकि हम आगे बढ़ चुके कि अब यमुना का मारग आ गया। और यमुना प्रेमधारा है। सत्य से ही प्रेम फूटेगा। झूठ से प्रेम नहीं फूटेगा। और प्रत्यक्ष रूप में भी गोस्वामीजी कहते हैं-

तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेज पुंज लघुबयस सुहावा।।

'मानस' का रहस्यपूर्ण प्रसंग। एक तपस्वी आता है। छोटी उम्र है; तेजस्वी है। खोज करते हैं रामायणी कि ये तपस्वी कौन था? बीच में आया, चला गया ये है कौन? न नाम, न कोई ठिकाना! क्या है ये? लेकिन तुलसी ने संकेत कर दिया, ये तपस्वी और राम जब गले मिले तब तुलसी लिखते हैं-

मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ।
मिलत धरें तन कह सबु कोऊ।।

तुलसी कहते हैं, आज मानो प्रेम परमारथ को मिल रहा है। तो ये प्रेम था। वहीं से प्रेममारग शुरू होता है। और फिर भगवान वन के पथ पर इधर-उधर जा रहे हैं। लक्ष्मणजी ने कहा कि महाराज, ये मारग तो जरा सीधा भी लगता है तो इधर से जाये। बोले, नहीं, नहीं, नहीं; जरा इधर भी जाये; थोड़ा इधर भी जाये। अब हमारा करुणा का मारग चल रहा है। जो कोल, किरात, भील जो दूर-दराज बसते थे, भगवान उसी की ओर जा रहे हैं। ये तीसरा मारग करुणा का मारग है।

तो 'मानस' सत्य, प्रेम, करुणा की एक शाश्वत-सनातनी यात्रा का नाम है। 'रामचरितमानस' का आरंभ सत्य है। और मध्य में 'अयोध्याकांड' में भरत के प्रेम की चर्चा हुई है। मध्य भाग प्रेम है। और 'उत्तरकांड' में 'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूं।' वो करुणा है। जिसका आदि सत्य, जिसका मध्य प्रेम और जिसका समापन करुणा में होता है। ये यात्रा है सत्य, प्रेम, करुणा। तो ऐसे परमात्मा, ऐसे सत्यरूप परमात्मा के चरणों में जिसका सच्चा प्रेम है, ये पितृचरण है। सच्चा प्रेम क्या? 'बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ।' ये सच्चे प्रेम का प्रमाण का दृष्टांत कि राम के विरह में जिसने अपना प्राण तिनके की तरह छोड़ दिया।

तो दशरथ के कुछ लक्षण मेरी दृष्टि में ये पितृचरण की वंदना है। ऐसी रामकथा में 'मानस-पितृदेवो भव' की चर्चा में आइए बाप! भगवान शिव की शादी का जिक्र किया गया। भगवान शिव ब्याह कर आये कैलास। पुत्रजन्म हुआ। ताड़कासुर को निर्वाण दिया। फिर भगवान शिव कैलास पर बैठे हैं। भवानी अवसर देखकर आती है और भगवान शिव को पूछती है, मुझे रामकथा सुनाओ। रामतत्त्व क्या है प्रभु? शिव राज़ी हुए। भवानी ने कथा में रुचि प्रगट की। जब शिव पार्वती के प्रश्नों का जवाब देने के लिए ध्यान से बाहर आते हैं तो पहला वाक्य शिव के मुख से कैलास के ऊत्तुंग शिखर से यही निकला-

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।।

हे भवानी, आप धन्य है! ऐसी कथा पूछी जो समस्त लोक को पवित्र करनेवाली गंगा है। देवी, भगवान का अवतार क्यों होता है, इदमित्थ नहीं कह सकता। फिर भी कुछ कारण बताए शिव ने। वैकुंठ के द्वारपाल जय-विजय को सनतकुमारों का श्राप मिला इसलिए प्रभु को धरती पर आना पड़ा। सतीवृंदा ने हरि को श्राप दिया इसलिए भगवान को अवतार लेना पड़ा। नारद ने श्राप दिया इसलिए प्रभु को अवतार लेना पड़ा। मनु-शतरूपा ने कठिन तपस्या की, फलस्वरूप राम को आना पड़ा। और पांचवां कारण राजा प्रतापभानु ब्राह्मणों के श्राप के कारण दूसरे जनम में असुर शिरोमणि रावण बना; उसका भाई विभीषण बना, कुंभकर्ण बना। रावण, विभीषण, कुंभकर्ण बहुत तप करते हैं; बहुत दुर्गम-दुर्लभ वरदान की प्राप्ति होती है। फिर वरदान के कारण रावण अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने लगा। और रावण अत्याचार करने लगा।

पूरा संसार रावण के कारण भ्रष्टाचार में डूब गया। धरती अकुला ऊठी। गाय का रूप लेकर ऋषि-मुनिओं के पास जाकर रो पड़ी कि मुझे बचाओ। ऋषि-मुनिओं ने कहा, हमारे बस की बात नहीं है। तो क्या करे? गये देवताओं के पास। देवताओं ने कहा कि हमारे बस में कुछ नहीं! सब पितामह ब्रह्मा के पास गये कि पितामह, बचाओ। ब्रह्मा ने कहा, अब किसी का बस नहीं। जिसने हमको बनाया उसी परमतत्त्व की हम प्रार्थना करें। फिर सबने मिलकर स्तुति की। आकाशवाणी हुई, मैं अंशों के साथ अवतार लूंगा। अयोध्या में आऊंगा। आकाशवाणी सुनकर सब प्रसन्न हुए। परमात्मा के आने की प्रतीक्षा करने लगे। मैं बार-बार कहता रहा हूं, पहले पुरुषार्थ करो। फिर भगवान के लिए पुकार करो। फिर प्रतीक्षा करो। फिर जाके प्रागट्य होगा।

तुलसीजी हमें अयोध्या लिये चलते हैं। रघुवंश का शासन है। वर्तमान राजाधिराज दशरथजी है। अब पितृचरण की वंदना में जोड़ दिया जाये तो दशरथ क्या है?

धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी।
हृदयँ भगति मति सारंगपानी।।

रामजनम की ओर तुलसी हमें लिये चलते हैं। अयोध्या है सर्वभौम राष्ट्र का मुख्य मथक। वर्तमान शासक है महाराजाधिराज दशरथजी। कैसे है ये पितृचरण? 'बेद बिदित।' वेद भी जिसकी सराहना करे। केवल लोक सराहना करे नहीं, वेद भी सराहना करे। ये पुण्यश्लोक है। ये पितृचरण है। जिसका नाम दशरथ है। रथों की बागडोरों को रथी अथवा तो सारथि पकड़ रखता है कि घोड़े इधर-उधर न भटक जाये। ऐसे जिसने अपनी इन्द्रियों पर काबू रखा है, संयम रखा है, उसी का नाम अध्यात्म जगत में दशरथ है। ये पितृचरण है। 'बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊं।' दूसरी बात यहां कहते हुए लिखा, 'धरम धुरंधर।'कैसे है राजा? धरम धुरंधर है। धर्म के द्वारा शोषण करनेवाला नही है; धरम की धूसरी कांध पर लेकर धर्म को पुष्ट करनेवाला राजा है।

कौन पुण्यश्लोक? कौन पितृचरण? किसका तर्पण करोगे? किसके प्रति श्रद्धा से श्राद्ध करोगे? जो धरम धुरंधर है; गुननिधि है। संसार में जितने सद्गुण है, महाराज दशरथजी में घर करके बैठे है। और राजा ज्ञानी भी है। हृदय में सारंगपाणि परमात्मा की भक्ति भी है। मानो राजा ज्ञानी भी है, कर्मठ भी है, भक्त भी है। वेद के रूप में अवतरित वेदों के तीनों खंड मानो दशरथ के रूप में अवतरित है- उपासना खंड, कर्मखंड, ज्ञानखंड। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। रानियों का आचरण भी पवित्र है। पति अनुकूल जीवन जीती है। और पतिपरायण स्त्रियां और महाराज दशरथ परम की आराधना करते हैं।

महाराज दशरथजी के जीवन में एक ग्लानि है कि इतनी रानियां, ये उम्र लेकिन पुत्रसुख नहीं है! कल आयोध्या अनाथ हो जाएगी! रघुवंश खत्म हो जाएगा! मेरे पास दुनिया आती है; मैं उनका समाधान देता हूं। लेकिन आज स्वयं मुझे समस्या है, मैं किसके पास जाकर के गाऊं? दशरथजी गुरु के द्वार गये। 'प्रभु, वैसे तो आपकी कृपा से बहुत सुख है लेकिन संसारी हूं तो एक पीड़ा है; मेरी रानियां उदास रहती है। पुत्रसुख नहीं है।' वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, मैं तो कब से प्रतीक्षा कर रहा था कि राजा एक बार मेरे पास आये और ब्रह्म की जिज्ञासा करे तो ब्रह्म को बालक बना दूं तेरे आंगन में। चलो, देर ही सही लेकिन चिंता मत करो। एक यज्ञ करो।

शृंगी ने पुत्र कामेष्टि यज्ञ करवाया। यज्ञपुरुष अग्नि की ज्वाला से प्रसाद का चरू लेकर निकलते हैं। यज्ञपुरुष ने प्रसाद-खीर का चरू वशिष्ठजी को दिया और कहा कि आप राजा को दे दो। राजा अपनी रानियों को जथा जोग भाग बनाकर दे दे। वशिष्ठजी ने प्रसाद हस्तांतरित किया अवधपति के हाथ में। प्रिय रानियों को प्रसाद बांटा गया।

कुछ काल बीता। हरि को प्रगट होने की बेला आई। योग, लगन, ग्रह, वार और तिथि पंचांग अनुकूल हुआ। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नौमि तिथि, मध्याह्न का समय। चारों ओर से सगुन होने लगे हैं। नदियों में आज अमृत बहने लगा। मंद सुगंध शीतल वायु बहने लगा। देवतागण पुष्प की वृष्टि करने लगे। पाताल के नागदेवता, पृथ्वी के ब्राह्मण-देवता, स्वर्ग के सुरदेवता सभी ने परमात्मा की गर्भस्तुति की। पूरे जगत में जिसका वास है, पूरा जगत जिसमें निवास करता है वो परब्रह्म-परमात्मा, वो भगवान, वो ईश्वर, वो परमपुरुष, वो परमतत्त्व माँ कौशल्या के भवन में चतुर्भुज रूप में प्रगट होते हैं।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

'हे अनंत, मैं किन शब्दों में आपकी स्तुति करूं?' असमर्थता व्यक्त की माँ ने। बालक के रुदन की आवाज़ सुनते ही ओर रानियां भ्रम के साथ दौड़ आई कि माँ कौशल्या ने कोई प्रसव की पीड़ा की शिकायत तो नहीं की, अचानक बालक रो रहा है! और माँ कौशल्या की गोद में अलौकिक बालक का विग्रह दर्शन करते ही सब आनंद में डूब गई। दासियां दौड़ी। महाराज के पास गई, बधाई हो, महिपति राजाधिराज, बधाई हो! आपके घर हमारी देवी कौशल्या ने पुत्र को जनम दिया! और राजा ने जब सुना; पहली अनुभूति और प्रतिक्रिया राजा की, ब्रह्मानंद का अनुभव हुआ। लेकिन सोचने लगा कि मेरे घर जो बालक बनकर आया है ये ब्रह्म है कि सामान्य है, उसका निर्णय तो केवल गुरु ही कर सकता है। वशिष्ठ बाबा को बुलाओ। वशिष्ठजी ने कहा, तुम्हारे घर साक्षात् परमात्मा बालक के रूप में प्रगट हुए हैं; सुनते ही महाराजा परमानंद में डूब गये। बाजेवालों को बुलाओ, गानेवालो को बुलाओ, बधाईयां कराओ। आज सापुतारा की इस व्यासपीठ से आप सभी को और दुनिया को राम जनम की बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो।

'मानस' सत्य, प्रेम, करुणा की एक शाश्वत-सनातनी यात्रा का नाम है। 'रामचरितमानस' का आरंभ सत्य है। और मध्य में 'अयोध्याकांड' में भरत के प्रेम की चर्चा हुई है। मध्य भाग प्रेम है। और 'उत्तरकांड' में 'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूं।' वो करुणा है। जिसका आदि सत्य, जिसका मध्य प्रेम और जिसका समापन करुणा में होता है। ये यात्रा है सत्य, प्रेम, करुणा।

कथा–दर्शन

- बुद्धपुरुष का स्वाभाविक जीवन मौन होता है।
- जिसमें मनुष्यता की महिमा हो वो मार्गी है।
- शीलवान वो है, देखे सबको लेकिन आंखों में वासना न हो, उपासना हो।
- जो सदा सत्संग करता है उसको कर्म कुछ नहीं कर सकता।
- अध्यात्म मार्ग सत्य, प्रेम, करुणा का मार्ग है।
- किसी की कृपा का परिणाम है हरिभक्ति।
- जिसका भजन बढ़ता है, कामना उससे दूर भागने लगती है।
- भजनानंदी साधु दिन में गृहस्थ होता है और रात को संन्यासी होता है।
  तथाकथित साधु दिन में संन्यासी होता है और रात में गृहस्थ होता है!
- अध्यात्मवादी रोज़ अपने को नया बनाता है और भौतिकवादी पुराना ही रहता है।
- सब दान सरल है, प्रेमदान कठिन है।
- प्रेम की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई इसलिए हम एक–दूसरे से द्वेष करते हैं।
- वन में भवन बनाना इससे बेहतर है जीवन में वनवृत्ति पैदा करनी।
- परिवार को दुःखी करके भजन मत करना। भजन करने में सबके आशीर्वाद चाहिए।
- करुणा मांगी नहीं जाती, करुणा सामनेवाला करता रहता है।
- पितृ वो है जो योगी लगे, भोगी न लगे।
- हर एक वृक्ष को पानी पिलाना पितृतपर्ण है।
- फूल तो एक तालाब में खिलता है, महक तो चारों दिशा में चली जाती है।
- सुख–दुःख एक सिक्के के दो भाग है। सुख–दुःख को नारायण समझो।
- संविधान में समय–समय पर परिवर्तन गतिशील जगत के लिए ज़रूरी है।
- कोलाहल तभी ज्यादा लगता है जब अलग–बगलवाले चुप होते हैं।
- अंदर जाने के लिए उपर उठना आवश्यक है।

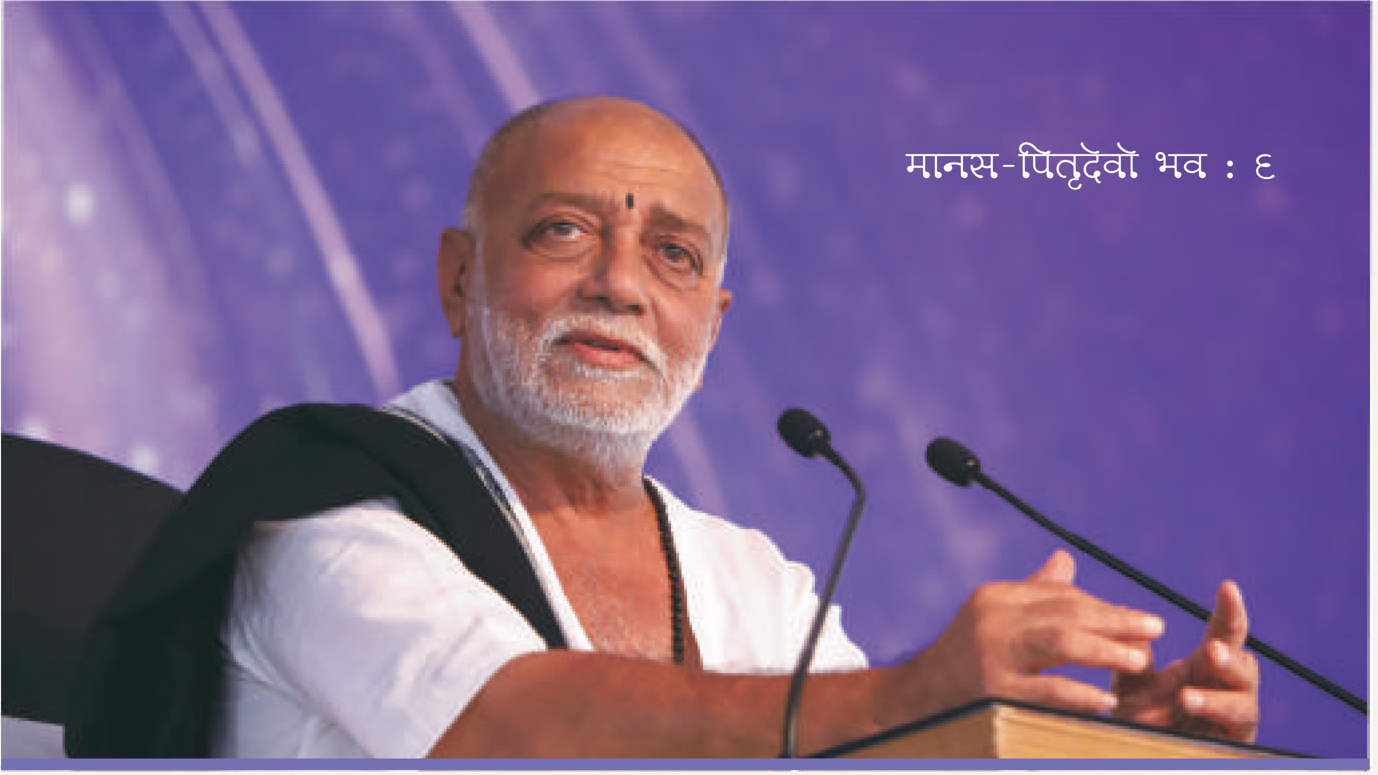

मानस-पितृदेवो भव : ६

पिता वह है जो भक्ति को गुप्त रखे और परिवारजनों को खुश रखे

'मानस-पितृदेवो भव', इसी शृंखला में हम पितृपक्ष में पितृदर्शन कर रहे हैं। 'मानस' में अंकित कई पितृ संकेतों में नव दिन में जितना कहा जाए, ऐसे नव पितृचरण की वंदना का हमने निर्णय किया। उसमें शिव को पितृ समझकर हमने प्रणाम किया। राम, हिमाचल, दक्ष प्रजापति, सत्यकेतु, स्वयंभू मनु को हमने याद किया। कल हम महाराज दशरथजी की पितृवंदना कर रहे थे। अब जनक की वंदना करनी है। जनक एक बिलग विलक्षण पितृ है।

एक श्रोता ने पूछा है, 'बापू, आप जो कह रहे हैं उसको सुनने में और अंदर उतरने में और आखिर में उसको पचाने के लिए किस भूमिका से श्रवण करना चाहिए?' आपने पूछा है तो आपसे संवाद करूं; आपके दिल तक बात पहुंचे। आप इधर-उधर सामने बैठे हैं; मेरे हज़ारों श्रोता अपने-अपने देश में, अपने घर में टी.वी. के सामने बैठे हैं। ये तो शारीरिक भूमिका पर आप सब बैठे हैं। कैसी बेठक हो, कैसा हमारा आसन हो कि जैसे व्यासपीठ पर मैं बैठा हूं तो व्यासपीठ की एक महिमा है। लेकिन आप भी जहां-जहां बैठे हैं, आपकी एक पीठ है। जैसे मुझे व्यासपीठ की अदब है कि सुरुचिभंग न हो, विवेक का पतन न हो, गलत मेसेज न जाए।

आप इन्टरनेट पर, व्होटस एप पर, विज्ञान के किसी भी माध्यम से किसी के सूत्र मरे नाम से मत भेजो! जो मैं बोला हूं उसी पर मेरी जिम्मेवारी है। आपको व्यासपीठ के उपर श्रद्धा है इसलिए कोई संत, बुद्धपुरुष, साहित्यकार द्वारा बोला हुआ, विशेषरूप में रिसीव कर दिया जाए और अपनी महिमा बढ़ाने के लिए मेरे नाम से मत भेजो। मेरा जो हो वो मेरे नाम से भेजो, प्लीज़। कोई ओशो के सूत्र को मेरे नाम चढ़ा देते हैं! मुझे भी ग्लानि होती है और ओशो के भक्तों को भी ग्लानि होगी। मेरा तो सब रेकोर्ड हो रहा है। किसी महापुरुष के वचनों को मेरे हैं, ऐसै कैसे कह सकता हूं? मैं जो बोलूं उसी को ही भेजना हो तो भेजो। विवेकानंद के सूत्र मेरे नाम भेजते हैं लोग! में क्या बोला हूं, क्या नहीं बोला हूं वो मुझे याद है। आप भी मुझे सुन-सुनकर अभ्यस्त हो जाओगे कि ये टोन बापू का है ही नहीं। इरादा तो सबका अच्छा है लेकिन ऐसा न करे तो अच्छा है। आप ऐसा करोगे तो आपकी कथाश्रवण की बेठक ठीक नहीं है। आप प्रचार कर सकोगे, पचा नहीं सकोगे। कथा का प्रचार तुम्हें करने की ज़रूरत नहीं है; मेरा दादा करके गये हैं। न प्रचार, न कोई नेटवर्क की ज़रूरत है। हम और आप आमने-सामने हैं, बीच में कोई नहीं।

युवानों को मैं खास कहूं, मेरे पास व्यासपीठ है, तो आपके पास प्यासपीठ है। आप तृषातुर है; मेरी जुबान पर आप लटक रहे हैं। धीरे-धीरे मेरे श्रोताओं में गोपीभाव आ रहा है ये देखकर मुझे खुशी होती है। हद तो तब होती है कि गज़ल मेरे नाम से भेजते हैं! मैं कहां कवि हूं? मैं आपकी गाई हुई, सुनाई हुई, लिखी हुई कविता-गज़ल पेश करता हूं। लेकिन में लिखता कहां हूं? नासमझ लोग ये भी करे कि ये श्लोक बापू ने बनाया है! बाझ आओ प्यारो! जितना जागृत रह सकूं, जितना जागृत आपको रख सकूं इतनी मेरी कोशिश है। कृष्णमूर्ति के सूत्र मेरे नाम से डाल दिए जाते हैं! शायद ऐसे भी सूत्र हो, जिसके साथ मैं संमत न भी हूं। ओशो के सभी सूत्र पर मोरारि बापू संमत हो ऐसा दबाव क्यों डालते हो? विज्ञान ने बहुत अच्छा काम किया है लेकिन यदि नासमझ के हाथ में विज्ञान आ जाए तो विज्ञान जैसा बुरा भी कोई नहीं! आप किस भूमिका से सुन रहे हैं, इसी पर बहुत आधारित है सूत्र को पचाना।

कथा की चार भूमिका है बाप! कथा मन की भूमिका से सुनी जाती हैं। इसमें मन प्रधान है। हम कहते हैं, मन लगाकर सुनो। ये अच्छी भूमिका है। सालों के अनुभव के बाद कहता हूं कि जब स्तुति चलती है प्रारंभ में उसी दौरान आप कोई काम न करे; आंखें बंद करके सुने; आंखें बंद करके एकाग्रता न आती हो तो जैसी आपकी रुचि लेकिन स्तुति के दौरान आप अपनी भूमिका निश्चित कर पाते हो कि मुझे कैलास की भूमिका से सुनना है, प्रयाग की भूमिका से सुनना है, नीलगिरि की भूमिका से सुनना है कि चित्रकूट की भूमिका से सुनना है। अस्तित्व वरदान देगा कि इतनी मिनटों में तुम्हारी भूमिका निश्चित हो जाएगी। थोड़ा समय लगेगा। और अध्यात्म में कभी देर हो गई, ऐसा मत समझना। अभी बाज़ी है हाथ में। उसी समय यदि आप एकाग्र न रहे लेकिन शांत बैठो; पंद्रह-बीस मिनट में आप अपनी भूमिका निश्चित कर पाओगे। थोड़ा अभ्यास करना होगा। ये भूमिका निश्चित हो जाए तो पचाना आसान हो जाए। ये सालों का अनुभव बोल रहा हूं। जब मैं प्रोग्राम में बैठता हूं तो मुझे व्यासपीठ ही दिखती है। मैं आंखें बंद करूं तो भी व्यासपीठ ही दिखें। गोपनीय बात कहूं तो मैं कहीं भी बैठकर किसी को भी सुनूं तो मुझे त्रिभुवन दादा ही दिखते हैं।

कथा के समान चित्तवृत्ति के निरोध का इतना सरल उपाय कोई नहीं है। अभ्यास करके देखो, फिर आप पचा पाओगे। हमारे पास चार वस्तु है- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। मैं 'मानस' के आधार पर ही कहूं, बुद्धि की भूमिका से कथा गरुडने सुनी। अपनी भूमिका छोड़कर कथा मत सुनो। जो है उसका सदुपयोग करो। आप बौद्धिक है तो बौद्धिक स्तर से ही कथा सुनो। गरुड बुद्धि लेकर कथा सुनने गया है। उसकी बुद्धि ने तर्क किया था कि रणमैदान में भगवान राम नागपाश बाण से कैसे बंधे? जो परमात्मा निर्बंध है, सबको मुक्त करनेवाला परमतत्त्व है वो एक राक्षस के नागपाश में बंध गए? और मुझे कहा गया कि तुम जाओ, क्योंकि मेरा खोराक सर्प है, सर्प को मैं खा जाऊं और भगवान को मुक्त करूं। गरुड गया, भगवान को मुक्त किया और बद्धि में तर्क हुआ कि भगवान को मैं मुक्त करूं वो भगवान कैसा? बुद्धिशाली आदमी यही सोचता है। बुद्धि की दिशा बदल गई और गया भुशुंडि के पास। जब बुद्धि बहुत सताए तब किसी कागभुशुंडि के पास पहुंच जाओ। कौआ अच्छा पक्षी नहीं है, तुलसी ने भी उसकी नोंध ली है। कौए को आप कितने ही प्रेम से पालो लेकिन कौआ गंदगी और अभक्ष्य भक्षण में चांच डाले बिना नहीं रहेगा। कागभुशुंडि कहते हैं, हे गरुड, मैं कौआ सब प्रकार से अपावन हूं।

बुद्धपुरुष की जाति-पाति मत देखो। कौआ कोई भी पशु के मांस, मज्जा, रक्त में चांच डालता है। वो अच्छा आदमी नहीं है। धर्मग्रंथों में और नीतिशास्त्रों में कौए को चांडाल कहा है। 'चांडाल' ये आदमी की हीनता का अंतिम शब्द है। किसी को चांडाल कहो, इससे बड़ा उसका अपमान हो ही नहीं सकता। कौआ जन्मजात चांडाल है। पक्षीओं में कौआ चांडाल है। पशुओं में कुत्ता चांडाल है। मुनिओं में क्रोध करनेवाला और श्राप देनेवाला चांडाल है। तराजू लेकर नीतिशास्त्र बैठा है। सबसे श्रेष्ठ चांडाल वो है जो दूसरों की निंदा करता है। कौए में से उसके गुण खोजो। खोजते-खोजते इसी कौए

में से आपको कागभुशुंडि मिल जाएगा, ये मैं वादा करता हूं। और तुम कृतकृत्य हो जाओगे। आपकी बुद्धि की भूमिका सिद्ध हो जाएगी। वही कौआ श्राद्ध का अधिकारी है; हमारा पितृ बनकर बैठा है। कोई तोता या मयूर श्राद्ध खाने नहीं आता। कौआ ही आता है। हमारे यहां कौए को शगुन माना जाता है। आपमें मन के संकल्प-विकल्प की प्रधानता है तो आप तीर्थराज प्रयाग की भूमिका बनाईए। वहां मन को केन्द्र में रखकर कथा सुनी गई।

नाथ एक संसउ बड़ मोरें।
करगत बेदतत्त्व सबु तोरें।।

भरद्वाज ने कहा, मेरे मन में बहुत संदेह आते रहते हैं। तो संशय छोड़ दे ऐसा नहीं कहा। जो तुम्हारी भूमिका है; बैठ जा मेरे सामने। कोई मन लेकर आए तो कथा में स्वागत है; उसकी भूमिका है समता। कथा प्रयाग में भूमि पर आ गई है। मन में समता आ जाए ऐसी भूमिका से कथा सुनो। चित्त ये तुलसीवाली भूमिका है। धीरे-धीरे चित्त जो थोड़ा विक्षेप में डूबा रहता है वो स्थिर होगा। आपको बार-बार गुस्सा आए तो ये मन और बुद्धि का तमाशा नहीं है, ये चित्त का तमाशा है। चित्तप्रधानता है वो चित्रकूट की भूमिका से आए, जहां तुलसी ने गाई।

आपमें अहंकार की भूमिका है; जैसे सती को लगा कि मैं दक्ष की बेटी सती हूं, कुंभज से कथा क्यों सुनूं? फिर भी सुनी नहीं पर बैठी तो सही। आपकी यदि अहंकार की भूमिका है तो भी रामकथा आपको निमंत्रित करती है। कम से कम बैठो। समय लगेगा; वही बौद्धिकता कभी ना कभी दीक्षित हो जाएगी और श्रद्धा में परिणित होगी। सती मिटकर आप पार्वती हो जाओगे। और फिर कथा का प्रवाह चलेगा।

तो सरलता से सूत्र कह रहा हूं क्योंकि सरलता ही मेरे वक्तव्य का मूलभूत स्थायीभाव है। सभी सूरों में घूम-घूमकर मेरा सम यही है, सरल रहना, सरल बोलना, सरल कपड़े पहनना, सरल व्यवहार करना, सरल खाना-पीना, सरल उठना-बैठना। आपको स्थायीभाव में जाना ही पड़ेगा, क्योंकि स्थायीभाव है अध्यात्म। अच्छा गायक घूम-घूमकर सम पर आता है। आपके दिल में कोई बात छिपती नहीं ऐसा आपका स्वभाव है तो कितना ही संयम रखो, कभी ना कभी आप बोल ही दोगे। स्वभाव की बद्धता है।

अहंकार है तो भी कथा में आओ; अहंकार दीक्षित हो जाएगा, क्योंकि शिव समष्टि का अहंकार है। आपके पास जो है उसका सदुपयोग करो। आपके पास जो है वो लेकर आओ; मन है, बुद्धि है, चित्त है, अहंकार है जो भी है, लेकर आओ। और हमें कहा गया है कि तुम ऐसे सुनते हो, ऐसे नहीं सुनना चाहिए। मैं कहता हूं, तुम जैसे हो, कथा में आओ। गंगा नहीं पूछती कि तू हिन्दु है कि मुसलमान है? तू ब्राह्मण है कि शूद्र है?

तो 'मानस-पितृदेवो भव' के कुछ सूत्र ओर लें, जिसमें जनक की आज वंदना करनी है। कौन-सी जनकता पहचानकर हम बाप कहें? क्या है जनकतत्त्व? हमारे गुजरात और भारत में किसान को हम बाप कहते हैं। यहां जनक पिता है क्योंकि जनक ने किसानी की है, हल जौता है, फसल पकाते हैं; सीता जन्मी है। हम राजा को पिता कहते हैं। हमारे भारत की परंपरा में राष्ट्रपिता। सत्ता पर हो वो राष्ट्रपति, महामहिम, आदरणीय है। लेकिन सत्ता पर न हो, सत्ता ही जिसकी गादी हो, उसको हम पिता कहते हैं।

पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।

जिसका पिता राजाओं का शिरोमणि हैं, जो राष्ट्र का अगवान है उसको हम बाप कहते हैं। जो सर्जक है, वर्धक है, पोषक है वो बाप है। हम साधुओं को तो बापू कहते हैं; पलने में हो तब भी बापू कहते हैं। हम क्षत्रियों को भी बापू कहते हैं। इसके पीछे तीन कारण है। ये सर्जक है, वर्धक है और समाज का पोषक है। उनको भी ये तीन सूत्रों का निर्वहण करना चाहिए।

'रामचरितमानस' में ऋषिमुनि को भी बाप कहने की प्रथा है। ऋषिमुनि, आचार्य, गुरु पिता है। गुरु पिता है जो नादवंश चलाता है।

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ।
तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।

विश्वामित्र को राम-लक्ष्मण को सोंपते हुए दशरथजी का बचन तुलसी ने अंकित किया कि मेरे तो आप प्राणनाथ है, लेकिन आज से मैं नहीं, मेरे बालकों के पिता आप है, दूसरा कोई नहीं। जो ज्ञानी है, जिसमें विवेक बहुत है, उसको भी हम पिता कहते हैं।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा।
बचन किरन मुनि कमल बिकासा।।

जनक में ये सब लक्षण है इसलिए जनक का परिचय पितृरूप में हैं। जो तीन का सर्जन कर सके और हमारे परिवार में भी जो तीन का पिता हो उसको बाप मानना चाहिए। ये तीन है शक्ति, भक्ति और शांति। सीता है भक्ति, शांति और आदि शक्ति। सीतारूपी शक्ति, भक्ति और शांति का बाप जनक है। जिस घर में शक्ति, भक्ति और शांति जिसने स्थापित की हो वो पिता माना गया है 'मानस' में। इसलिए भी जनक पिता है। सुनयना का जो पति बन जाए वो पिता बन जाए। सुनयना याने सुंदर दृष्टिकोण। जिसके पास सुंदर नेत्र है, जिसकी सोच सुंदर है वो सुनयना का पति पितातुल्य है। जो सुंदर-दृष्टिवाला बाप हो उसको भी तुलसी ने पिता के रूप में स्वीकार किया है।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू।
जाहि राम पद गूढ़ सनेहू।।
जोग भोग महँ राखेउ गोई।
राम बिलोकत प्रगटेउ सोई।।

'बालकांड' में तुलसी वंदना प्रकरण में जनकजी की वंदना करते हैं कि अपने परिजनों के साथ मैं विदेहराज जनक की पितृवंदना करता हूं। जिसको परमात्मा के चरणों में गुप्त प्रेम हो वो पिता है। हमारे परिवार में भी ऐसा पिता होना चाहिए जो परमात्मा की भक्ति में डूबा हुआ है लेकिन परिवार को पता न चलने दे, क्योंकि परिवार ममता चाहता है। वही पिता है, जो भजन को गुप्त रखते हुए परिवारजनों को ममता दे। जनक ने दोनों किया।

तेहि कि मोह ममता निअराई।
यह सिय राम सनेह बड़ाई।।

हरि के चरणों में मेरा स्नेह गुप्त रहे, ताकि परिवारजनों को ये न लगे कि हमारी ओर उनका स्नेहभाव कम हो गया है। परिवार को दु:खी करके भजन मत करना। भजन करने में सबके आशीर्वाद चाहिए। इसलिए छोटे-से छोटे बच्चें से लेकर किसी का भी मनदु:ख न हो। भले, धर्माचार्यों ने तुम्हें सिखाया हो कि ये सब प्रपंच है, माया है। उनकी मत सुनो, मोरारि बापू की सुनो। जनक जैसे विदेहराज को मोह और ममता हो सकती है? लेकिन सीय-राम के स्नेही थे जनक। चुस्त धार्मिक लोग भगवान की पूजा करते हैं तब छोटा-सा बच्चा आता है तो उनको भी हटाते हैं! एक माला कम हो तो कोई बात नहीं। बच्चे के सामने मुस्कुराओ। इतने भी धार्मिक न हो कि बच्चों को प्यार भी न करो! बच्चों को प्यार करो; बुझूर्गों की सेवा करो; समवयस्क से मैत्री रखो ये ज़रूरी है। आपने भगवान को प्रसाद धराया हो और बालक आकर शीरा खा जाए तो खुश होना कि साक्षात् बालकृष्ण ने मेरा भोग स्वीकारा है। पिता वह है, जो भगवद्चरण में भक्ति हो तो भी गुप्त रखे और परिवारजनों को खुश रखे। परिवारजनों को नाराज़ करके भजन ठीक से नहीं हो पाएगा।

तुलसी कहते हैं, जनक ऐसा पिता है, जिसने अपने भोग को योग में छिपा रखा है। देह में होते हुए भी विदेही है। लेकिन स्थायीभाव आ ही जाता है। 'राम बिलोकत प्रगटेऊ सोई।' राम को देखते ही उसका भीतरी भाव जनकपुर में फूट पड़ता है। जनक योगी भी है, भोगी भी है। जनक अपनी धारणा से विपरीत कुछ हुआ तो क्रोधी भी है। जनक प्रेमी भी है। ये सब बाप के लक्षण है। धनुष तोड़ने में विलंब हुआ तो जनक क्रोध कर देते हैं। जनक विवेकी भी है। तो उसी को हम पितृचरण कहेंगे जिसमें ये गुण हो। और सब कुछ होते हुए भी जनक एक अर्थ में इच्छामुक्त है।

हमारे यहां उपनिषदकारों ने एक सूत्रपात किया है, 'अनीहो पिता।' जिसकी सब इच्छाएं खत्म हो गई वो बाप है। ऐसे बाप बनना मुश्किल है, क्योंकि हम संतानों के लिए भी इच्छा करते हैं। ये बुरा भी नहीं है। लेकिन आध्यात्मिक पिता का जो परिचय दिया है वो 'अनीहो पिता।' जैसे 'ईश्वर अनीह।' याने इच्छामुक्त है। बार-बार मैं मेरे सूत्र दोहराता हूं, मेरे मन के अनुकूल बात घटे तो हरिकृपा और मेरे मन के विपरीत हो तो हरिइच्छा। इच्छामुक्त भूमिका बहुत अच्छी भूमिका है, लेकिन कोई जनक जैसा ही चरितार्थ कर सकता है। हमारे सर प्रभाशंकर पट्टणी साहब ने लिखा था-

पिताजीने काने पडी मारा वन जावानी वात।
पुत्रवियोगे एणे प्राण त्यज्या, मने मळजो एवो तात।
बनुं पिता तो बनुं एवो, हतो रघुनाथजीनो जेवो।

इच्छामुक्त कैसे हुआ जाए? मैं मेरा मत कहूं, इच्छा करना कोई अपराध नहीं है सांसारिक होने के नाते से। लेकिन इच्छामुक्ति मिल जाए तो उसके समान कोई भूमिका नहीं है। चार वस्तु का ध्यान रखना; अभ्यास करने से हो सकता है। एक, वो इच्छा करो जो वर्तमान के साथ जुड़ी हुई हो। भविष्य के साथ जुड़ी हुई हो, वो इच्छा न करो। वर्तमान में हमें भूख लगी है तो खाने की इच्छा बुरी नहीं हैं। थोड़ी भूमिका बनाकर सुनोगे तो आप पचा सकोगे। अभी मुझे प्यास लगी है तो कोई पानी पिलाए ये इच्छा गुनाह नहीं है। इच्छा वर्तमान से जुड़ जाती है और पूरी होने के बाद मर जाती है। समंदर का नियम है, बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा जाती है। और खाते-खाते बड़ी मछलियां भी मर जाती है; ये समुद्र का क्रम है। भवसिंधु में हम बड़े मगरमच्छ है।

दूसरा, इच्छापूर्ति के साधन उपलब्ध हो तो इच्छा करना। आपकी इच्छा हो कि मेरे यहां हाथी बांधना है और आपका केवल एक झोंपडा है तो इच्छापूर्ति का साधन नहीं है। साढ़े नव बजे मुझे कथा से जुड़ना है तो मेरी इच्छा वहां जुड़ जाती है कि अब चार घंटे मुझे कथा कहनी है। जिसकी इच्छा वर्तमान से जुड़ जाती है वो आगे बढ़ती है। हम इच्छा करे कि छप्पन भोग खाएं और साधन सुखी रोटी का भी नहीं है, वो इच्छा दुःखदायी है।

तीसरा, ऐसी इच्छा करो जो दूसरे का अहित न करती हो। चौथा, इच्छा आप अकेले के लिए अभीष्ट न हो। मैं इच्छा करूं कि आज मुझे खीर, पूरी, पकोडे ये सब मिले तो मैंने इच्छा की; वर्तमान में भूख लगी है, साधन भी उपलब्ध है; इसमें किसी का अहित भी नहीं है, लेकिन मुझे जो अभीष्ट है, मैं अकेला न खाऊं, दूसरो को भी दूं।

इस चार वस्तु से विपरीत हो ऐसी इच्छा भूल से भी मत करना। जो वर्तमान से जुड़ी नहीं ऐसी इच्छा मेरे युवान भाई-बहन, कभी मत करना। जिसके लिए साधन उपलब्ध नहीं है, जो इच्छा दूसरों का अहित कर दे, जो इच्छा का फल आप अकेले भोगने की कामना करो ऐसी इच्छा कभी मत करो। ये चार सूत्र समझ में आ जाए वो इच्छाओं की जाल में होते हुए भी इच्छामुक्त हो जाता है। उसी को उपनिषद 'अनीहो पिता' कहते हैं। ये हृषिकेश दर्शन है; मूल तलगाजरडा का दर्शन है। विष्णुदादा तो तलगाजरडा की मिट्टी में बड़े हुए हैं।

तो वर्तमान से जुड़ी इच्छा करनी चाहिए। पंद्रह दिन के बाद मुझे खीर मिले ऐसी इच्छा नहीं की जाती। अभी भूख लगी है और रोटी पाने का साधन मेरे पासे है तो मैं होटल में खा लूंगा। साधन उपलब्ध है तो करो। और मैं मेरे पैसे से खाऊं, उसमें दूसरे का अहित नहीं होगा। और मैं खाऊं तो अगल-बगलवालों को ओफर करूं। हरिभजन की वर्तमान में इच्छा हुई तो हर वस्तु छोड़कर हरि भजने बैठ जाओ। मुझे वर्तमान में इच्छा हुई कि मुझे भगवद्कथा में जाना है, तो जाओ। लेकिन साधन भी उपलब्ध होना चाहिए। मेरे कथा में जाने से किसी का अहित न हो; घर-ओफिस-बच्चों का काम न बिगड़ता हो तो कथा में जाओ। और मेरी कथा में जो मुझे मिला वो केवल मेरे लिए अभीष्ट नहीं है, सबको उसका फल मिले ऐसा हो तो जाओ कथा में। मरीज़ साहब की अच्छी गज़ल है गुजराती में कि मुझे जो मिले वो मेरे अकेले का न हो। परमात्मा ने इच्छा पूरी कर दी तो उसको अकेले नहीं भोगना चाहिए, उसको बांटे।

बस एटली समज मने परवरदिगार दे,
सुख ज्यारे ज्यां मळे त्यां बधांना विचार दे।
दुनियामां कंईकनो हुं करजदार छुं मरीज़,
चूकवुं बधानुं देण जो अल्लाह उधार दे।

बुज़ुर्गो को मैं प्रणाम करूं, आपने सुना है और कईयों ने पचाया भी है। लेकिन मेरी कथा युवानों के लिए है, मैं उनको कहूं कि तुम इच्छा करो और फल प्राप्त करो लेकिन प्लीज़, ओफर थोड़ा दूसरों को भी करो कि मुझे इज़्ज़त दी है तो मेरी इज़्ज़त से तेरी इज़्ज़त करूं। मुझे परमात्मा ने समृद्धि दी है, तू अकिंचन है, अभावग्रस्त है, मैं तुझे थोड़ी मदद करूं। किसी को पूछने की ज़रूरत नहीं है, आप बहो। लेकिन दादा कहते हैं, चारों सूत्रों से विपरीत है, कृपया ऐसी इच्छा कभी मत करो। चार सूत्रों के मुताबिक इच्छा करते जाओगे तो बड़ी मछली छोटी मछलियां को खाते-खाते स्वयं मर जाती है और आदमी हो जाएगा 'अनीहो पिता।'

तो जनक ऐसा पिता है जो ज्ञानी, योगी, तपस्वी, अष्टावक्र के साथ बैठकर जो सत्संग कर सकता है; शुकदेवजी भी कभी उनके पास ज्ञानार्जन के लिए जाते हैं। ऐसा परम पहुंचा हुआ महापुरुष जनक ये पितृचरण है, क्योंकि पितृचरण के सभी लक्षण उसमें मौजूद है। फिर भी कितने प्रेमी थे! तुलसी कहते हैं-

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा।।
कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक।
मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक।।
सहज बिरागरूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा।।

देखो, योगी का प्रेम प्रगटा। जिज्ञासा करना तत्त्वतः ज्ञानीओं का स्वभाव है; तो पहले जिज्ञासा के स्थायीभाव में गए। महाराज, ये दो बालक कौन है? मुझे इतने प्रिय क्यों लग रहे हैं? आपके मन में अकारण किसी के प्रति सच्चा प्रेम जागे तो समझना, ये अकस्मात नहीं है, अस्तित्व की योजना है। गोपीजन ऐसे ही कृष्ण की प्रेमी नहीं बन गई। बड़ी लंबी यात्रा करके गोपीजन आई है। कभी-कभी जनम-जनम की यात्रा काम करती है। हम जान नहीं पाते ऐसे अचानक खींचे जाते हैं और ऐसा पारमार्थिक प्रेम जब अचानक उमड़ पड़े तब इस लम्हें को पकड़ना हम चूक जाते हैं। जब वस्तु उपलब्ध होती है तब उसकी कीमत नहीं होती है। उपलब्ध वस्तु छूट जाती है तब लगता है कि चूक गए! बुद्धपुरुष हमारी मुठ्ठी में आता है, लेकिन चला जाता है तब अफ़सोस होता है कि लम्हा छूट गया!

अमे अपराधी कांई न समज्या,
न ओळख्या भगवंतने।
जळ कमख छांडी जाने बाळा,
स्वामी अमारो जागशे।

जनक कहते हैं, विश्वामित्र, ये दोनों राजकुमार एक-दूसरे के सामने देखते हैं तो उसकी चित्तवन कितनी अलौकिक है! मैं इन दोनों राजकुमार को देखता हूं तो मुझे पता नहीं कि ये दो कौन है लेकिन लगता है, ब्रह्म और जीव कुमार अवस्था में आये हैं। जनक अखिलाई से भरे हुए है। जैसे कल मैंने कहा कि महाराज दशरथजी विरल पितृचरण है वैसे महाराज जनक भी विरल पितृचरण है। जनक ये जनक राजा का नाम नहीं है, जनक एक डिग्री है। जनक का संस्कृत वाङ्मय के मुताबिक अर्थ है पिता। जिसका नाम तो दूसरा है लेकिन लोग उसको जनक कहते हैं, ये कैसा पितृचरण होगा! तुलसीदासजी ने समुद्र को भी पिता कहा। 'जनक एक जग जलधि अगाधू।' ये जनक ज्ञान और विवेक के सागर है, इसलिए वो जनक है।

तो संक्षिप्त में ये पितृचरण वंदना आज की कथा में जनक की की। अब बचे हैं तीन दिन और तीन पितृ-जटायु, बालि और रावण। अयोध्या में भगवान राम का प्रागट्य हुआ। जैसे प्रभु प्रगट हुए, सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म दियाा और कैकेई ने एक पुत्र को जन्म दिया। अयोध्या में एक महीने तक उत्सव चला। चारों लालन बड़े होने लगे। नामकरण संस्कार का समय हुआ। ज्ञानी गुरु वशिष्ठ आदि सब पधारे हैं। वशिष्ठजी ने कहा, कौशल्या के अंक में खेल रहा है सांवरा बालक उसका नाम मैं 'राम' रखने जा रहा हूं, क्योंकि उसका नाम लेने से जगत को आराम, विश्राम, विराम का अनुभव होगा। राम के समान वर्ण, स्वभाव,

परिवार को दुःखी करके भजन मत करना। भजन करने में सबके आशीर्वाद चाहिए। इसलिए छोटे-से छोटे बच्चें से लेकर किसी का भी मनदुःख न हो। चुस्त धार्मिक लोग भगवान की पूजा करते हैं तब छोटा-सा बच्चा आता है तो उनको भी हटाते हैं! एक माला कम हो तो कोई बात नहीं। बच्चे के सामने मुस्कुराओ। इतने भी धार्मिक न हो कि बच्चों को प्यार भी न करो! पिता वह है, जो भगवद्चरण में भक्ति हो तो भी गुप्त रखे और परिवारजनों को खुश रखे। परिवारजनों को नाराज़ करके भजन ठीक से नहीं हो पाएगा।

शील है, कैकेई का ये पुत्र वशिष्ठ को लगा कि विश्व का भरण-पोषण करेगा इसलिए कहा, इस बालक का नाम मैं भरत रख रहा हूं। जिसके नाम से शत्रुबुद्धि का नाश होगा ऐसे बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। और जो समग्र जगत का आधार है, रामप्रिय है, परम उदार है, ऐसे इस बालक का नाम मैं लक्ष्मण रखता हूं। भगवान वशिष्ठ ने कहा, राजन्, ये केवल तुम्हारे पुत्र ही नहीं है, ये वेदों के सूत्र है। चारों राजकुमार गुरु के आश्रम में विद्याप्राप्ति के लिए गए। अल्पकाल में विद्या अर्जित की। गुरु ने जो तैत्तिरीय उपनिषद पढ़ाया था, 'मातृदेवो भव।', 'पितृदेवो भव।' 'आचार्यदेवो भव।' ये सब चरितार्थ किया। समय बीतने लगा।

महाराज विश्वामित्र सिद्धाश्रम में बक्सर में रहते थे; यज्ञ-याग करते हैं, लेकिन मारीच-सुबाहु से भयभीत है। महात्मा ने सोचा कि परमात्मा के बिना ये असुरों का नाश नहीं होगा। ध्यान में देखा कि वो परमतत्त्व दशरथ के घर पुत्र के रूप में आ चुका है। विश्वामित्र ने पदयात्रा की। सरजू में स्नान किया और दरबार में बाबा पधारे। महाराज दशरथजी ने पूछा कि बाबा, मैं आपकी क्या सेवा करूं? बोले, असुर लोग मेरी साधना में विक्षेप करते हैं। राम को छोटे भाई के साथ मुझे दे दो; ये कार्य पूरा करेंगे। ममतावश दशरथजी थोड़ा अविनय कर देते हैं कि प्राण दे सकता हूं लेकिन पुत्र नहीं दे सकता। वशिष्ठजी ने दरमियानगीरी की, सौंप दो। अपने कुलगुरु ने निवेदन किया तो अपने दोनों पुत्र सौंप दिए। विश्वामित्र के संग पदयात्रा का आरंभ हुआ। रास्ते में ताडका को एक ही बाण में राम ने निर्वाण दिया। दूसरे दिन यज्ञ का आरंभ। मारीच-सुबाहु बाधा डालने आए तब मारीच को बिना फने का बाण मारकर शत जोजन समुद्रतट पर लंका में फेंक दिया। सुबाहु को अग्नि बाण से जलाकर भस्म किया। यज्ञ पूरा हुआ। कुछ दिन प्रभु वहां रुके।

विश्वामित्रजी ने कहा, राघव, आप यज्ञपूर्ति के लिए आए हैं, तो अहल्या का यज्ञ बाकी है और धनुषयज्ञ बाकी है। धनुषयज्ञ सुनते ही हर्षित होकर राम-लक्ष्मण जनकपुर की पदयात्रा करते हैं। गौतम ऋषि का आश्रम; अहल्या पत्थर देह पड़ी हुई है। प्रभु ने जिज्ञासा की, ये कौन है? विश्वामित्र कहते हैं, राघव, ये गौतमनारी है। ये श्राप के कारण पत्थरदेह हो चुकी है। उसको आपकी चरणरज चाहिए। पवित्र चरण के स्पर्श से वो प्रगट हो गई। अहल्या का उद्धार हुआ। राम-लखन मुनिगण के साथ गंगा के तट पर पहुंचते हैं। गंगा की उत्पत्ति के बारे में राम ने पूछा। गंगावतरण की कथा सुनी। गंगास्नान किया। वहां से प्रभु जनकपुर पधारे हैं।

महाराज जनक को खबर मिली कि बाबा विश्वामित्रजी पधारे हैं। सबको साथ लेकर अमराई में जनकजी पधारे और प्रणाम किया। राम को देखते ही सब खड़े हो गए! जनक भी खड़े हो गए! जनकजी कहते हैं, हे मुनि, मैं खींचा क्यों जा रहा हूं? ये बालक कौन है? मुनिकुल तिलक है कि नृपकुल के बालक है? विश्वामित्रजी गर्भित उत्तर देते हैं, राजन्, ये केवल आपको ही प्रिय लगे ऐसा नहीं, सबको प्रिय है ये। स्वागत किया। 'सुंदरसदन' में विश्वामित्रादि मुनिगणों के साथ राम-लक्ष्मण को ठहराया। मुनियों के साथ प्रभु ने भोजन किया; बिश्राम किया। सायंकाल प्रभु नगर दर्शन करने जाते हैं। पूरी मिथिला को रूपमाधुरी में डूबा दिया। लौटकर गुरुदेव की पूजा की। गुरु से तत्त्वादि बातें हुई।

सुबह राम जनक के बाग में फूल लेने जाते हैं, वहां पहली बार सीयाजी का मिलन हुआ। एक-दूसरे को समर्पित हुए। जानकीजी गौरी की स्तुति करती है। भवानी वरदान देती है, तुम्हारे मन में जो सांवरा बस गया वो राम तुझे प्राप्त होगा। सखियों के संग जानकीजी लौटती है। राम गुरु के पास आते हैं। दूसरे दिन धनुषभंग का समय था। राम गजपंकजनाल की तरह धनुषभंग करते हैं। परशुराम बाबा आये। अवकाश प्राप्त करके चले गए। दूसरे दिन दूत भिजवाया। दशरथजी बारात लेकर जनकपुर आए। मागसर शुक्ल पंचमी का दिन था। गोरज बेला। राघव की बारात निकली। लग्न की विधि संपन्न हुई। तीनों राजकुमार का ब्याह हुआ। बिदा का प्रसंग हुआ। सब अयोध्या पहुंचे। विश्वामित्र की बिदा हुई। यहां 'बालकांड' समाप्त होता है। 'अयोध्याकांड' कल शुरू करेंगे।

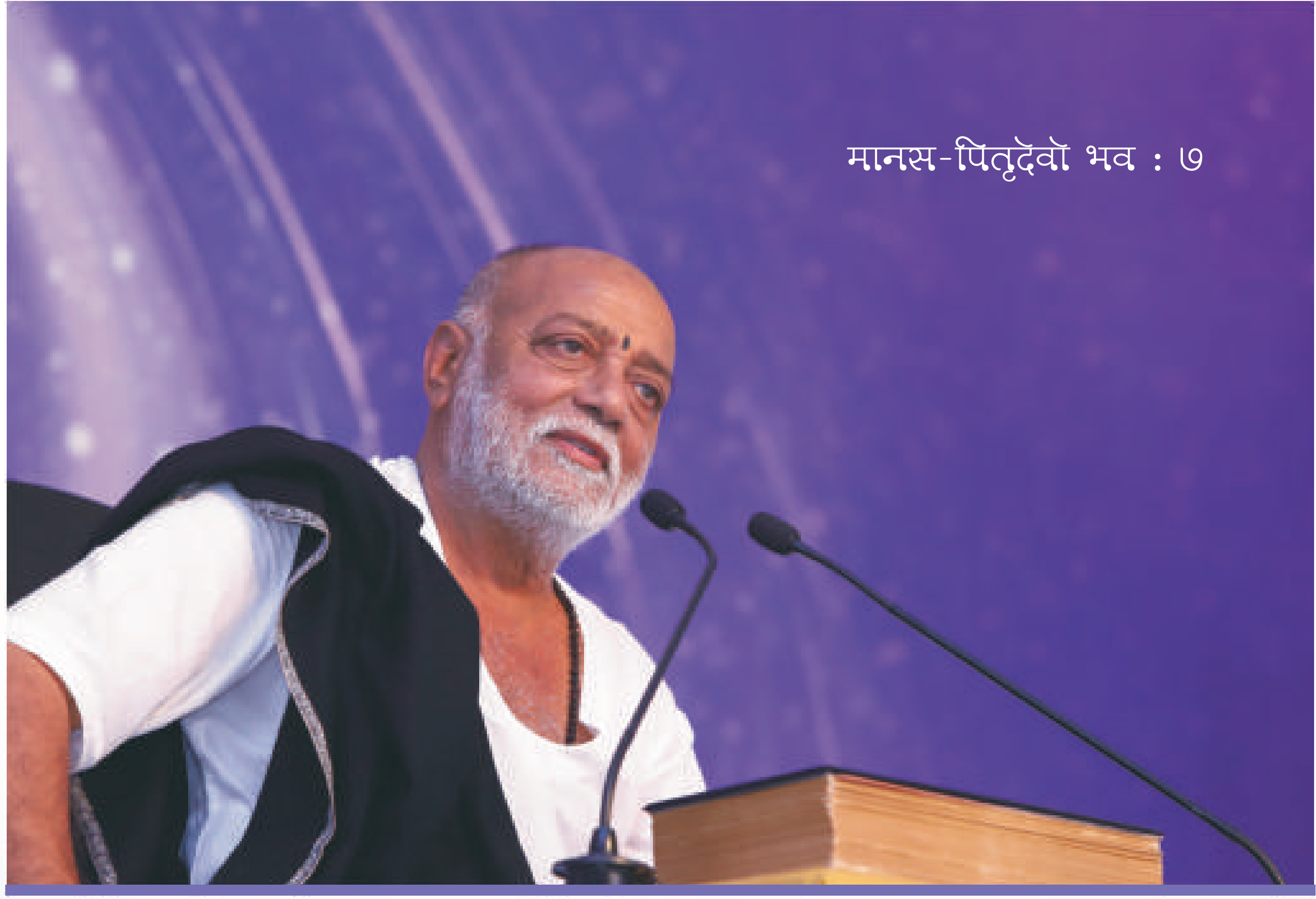

जो पितृ हाज़िर नहीं है उनका स्मरण करो, जो हाज़िर है उनकी सेवा करो

'मानस-पितृदेवो भव।' जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के ट्रेक पर चल रही है। मेरे पास बहुत-सी जिज्ञासाएं आती है। एक बात बार-बार पूछी जा रही है कि बापू, आप 'रामायण' के पितृओं की वंदना कर रहें हैं। 'महाभारत' के पितृओं को याद क्यों नहीं करते? उसके लिए पूरी कथा चाहिए। 'महाभारत' के पितृओं की वंदना करने हम चलेंगे तो खबर नहीं, हमें कितना समय चाहिए? और है सब महत्त्व की वंदना। भगवान बादरायण व्यास से शुरू करूं। पितामह भीष्म को स्मरूं। विदुर को स्मरूं। पांडु और धृतराष्ट्र महाराज को भी स्मरूं। मुंबई में रहनेवाले व्यासकर्मी हमारे आदरणीय विद्वान दिनकरभाई जोशी है, उसने 'महाभारत' पर बहुत काम किया है। और हमारे भावनगर के नानाभाई भट्ट, उसने 'रामायण' के पात्रों पर और 'महाभारत' के पात्रों पर बहुत न्यायी और बिलकुल साधार बातें लिखी है। मैं ये इसलिए याद कर रहा हूं कि ये जो जुवान भाई-बहन है, उसको अपनी भाषा का प्रोब्लेम है। मैं निवेदन करता चलूं कि आपके बच्चें इंग्लिश मिडियम में पढ़े, चोक्कस पढ़े लेकिन अपनी भाषा भूले ना इसके लिए थोड़ी केर करो। तुम्हारे बच्चें अपनी भाषा गवां रहे हैं! हमारे पूर्वजों ने, हमारे समकालीन विद्वानों ने ऐसे-ऐसे ग्रंथ दिये हैं उसको पढ़ने की क्षमता नहीं है भाषा के कारण! महाराष्ट्र की मराठी भाषा जीवंत रखो। गुजरात की गुजराती जीवंत रखो। जो प्रदेश के आप हो उस प्रदेश की भाषा को प्यार करो।

तो 'महाभारत' के पितृचरणों की वंदना ये बहुत रसमय प्रसंग हो सकता है। लेकिन अभी इतना अवकाश नहीं। फिर भी कोई संदर्भ आया तो, प्रवाह चला तो कहूंगा। लेकिन इन कथा में जो पितृवंदना का संवाद चल रहा है; 'मानस-पितृदेवो भव।' मैं ज़रूर, जो हाज़िर नहीं है ऐसे पितृओं का स्मरण कर ही रहा हूं। दादा-दादी, परदादा, फलां-फलां लेकिन मेरा इरादा है, आप चूक न जाय, जो तुम्हारे माता-पिता अभी मौजूद है उसी के प्रति मेरा संकेत है। वो पितृओं में

कभी जीवंत पितृ भूला न जाय। कहीं आप ये न सोचे कि बापू ने वो पितृओं की बात की जिसका श्राद्ध करना है। ये तो है ही। लेकिन जो हमारे घर में बैठा है उसी पिता की ओर मेरी ज्यादा दृष्टि है।

मैं एक सूत्र कहकर आगे बढूं। पितृ का स्मरण करो। जो नहीं है उसका स्मरण करो। इस श्राद्ध के बहाने, उसके सुकर्मों के बहाने, उसने तुम्हें जो संस्कार दिये हो उसी के बहाने, उसने अच्छे काम किये हो उसको आगे बढ़ाने में जो हाज़िर नहीं है उसका स्मरण करो। जो है उसकी सेवा करो। प्लीज़, मेरे देश की युवानी इन बातों को समझो। तुम जो नहीं है उसकी तो बहुत चिंता करते हो क्योंकि ये डांटेगा नहीं, कुछ करेगा नहीं, कुछ भी करो। श्राद्ध करो, न करो लेकिन जो सामने बैठा है, जो तुम गलत राह पर जाते हो तो सविनय रोकता है कि बेटा, ऐसा मत बोल, उसकी सेवा करो। तो याद रखे मेरे भाई-बहन, जो हाज़िर नहीं है माता-पिता उनका सिमरन करो और जो हाज़िर है उनकी सेवा करो। और आप मुझे पूछे कि बापू, किस प्रकार की सेवा करे? तो एक ही प्रकार की सेवा करो-

आग्या सम न सुसाहिब सेवा।

ये जो कहे वो करो। आप कहेंगे वो गलत कहेंगे तो भी करना? एक मिनट के लिए हां कह दो, हां, पिताजी ठीक है। फिर पांच मिनट के बाद कहो कि पिताजी, आपने कहा, मुझे करना ही है। आपकी आज्ञा ही मेरे लिए सेवा है लेकिन धीरे से पिता के पास बैठकर आप बूढ़े पिता को, पुराने विचारवाले पिता को वर्तमान जगत कैसे चल रहा है उसका निरीक्षण करके सविनय एक पद्धति से उसको कहोगे तो बात मान जाएंगे। और फिर उसी आज्ञा का अनुसरण ये सेवा।

तो पितृचरण की वंदना चल रही है तब ज़रूर आपकी जिज्ञासा अच्छी है कि 'महाभारत' के पितृचरण की वंदना होनी चाहिए। और 'महाभारत' में बहुत पितृतपर्ण की कथाएं आपको मिलेगी। इवन 'रामायण' में तो मिलेगी ना? भरत ने भी पितृक्रिया की है। वशिष्ठ ने कहा और भगवान ने इस शास्त्रसिद्धांत को, उस नियम को निभा करके वहां मन्दाकिनी में पितृतपर्ण किया।

हमारे उपर त्रण प्रकार के ऋण है, बच्चों! १. पितृऋण २. ऋषिऋण ३. देवऋण। ये तीनों ऋण आदमी को पूरे करने होते हैं। ऋषिऋण पूरा होता है 'रामायण', 'गीता' का स्वाध्याय करने से। ऋषि और मुनि का ऋण केवल शास्त्र अध्ययन, स्वाध्याय करने से पूरा होता है। स्वाध्याय, उसमें कभी प्रमाद न करे। 'स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।' ज्ञानेश्वर महाराज ने जो 'ज्ञानेश्वरी' दी। ज्ञानेश्वर ऋषि है, भगवान है। वह ऋषि के ऋण से मुक्त होना है तो 'ज्ञानेश्वरी' का पाठ करो। जगद्गुरु तुकाराम का ऋण उतारना है तो अभंग गाओ; अभंग का पारायण करो। वाल्मीकि और तुलसी ऋषि है, इस ऋषिऋण से मुक्त होना है तो 'रामायण' गाओ; 'मानस' का स्वाध्याय करो। कृष्ण पूरे जगत का बाप है; पितृओं का पितृ है। ये जो सिख भाई है, पूरी पंजाबी परंपरा है उसको गुरु नानक और दसों गुरुओं का ऋण चुकाना है तो 'गुरु ग्रंथसाहब' का पाठ करे। ऋषिऋण तो केवल शास्त्रवचन गुनगुनाने से चुकाया जाता है। ऋषि को आप क्या दे पाओगे? मैं क्या दे पाऊंगा? मैं जनम-जनम तुलसी की चौपाईयां गाऊं तो भी ऋण से मुक्त न हो पाऊं।

देवऋण; यज्ञ करके, दान करके, सत्कर्म करके देवऋण से मुक्ति प्राप्त होती है। छोटे यज्ञ; बड़े यज्ञ नहीं। मैं यज्ञ का विरोधी नहीं। मैं अखंड अग्नि-उपासक आदमी हूं; अग्नि के पास बैठा रहता हूं। यज्ञ बहुत ज़रूरी है। 'भगवदगीता' में कहा है, यज्ञ, दान और तप कर्म कभी छोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि ये बुद्धिमान की मलिन होती बुद्धि को बारबार विशुद्ध करने के प्रयोग है। लेकिन आज के युग में इतने बड़े-बड़े यज्ञों की ज़रूरत नहीं! मुझे माफ़ करिएगा, मुझे गलत न समझो। कहने का मतलब इतना डब्बा घी होम दो, इतने बड़े-बड़े यज्ञ! माफ़ करना, प्लीज़। हजार कुंडी यज्ञ! अरे, एक कोकनो चूलो पेटावी दे ए यज्ञ ज छे। आ आदिवासी चुला फूंके छे एने तुं गेसनुं सिलिन्डर आपने, एक मोटो यज्ञ ज छे. हजार कुंडी यज्ञ करो, मारी ना नथी। मने आमंत्रण आपे छे तो हुं ये जाऊं छुं। लेकिन मेरी मानसिकता के अनुकूल ये कर्म नहीं है।

मुझे पूछा गया था सुरतवाले हमारे एक वडील ने कि बापू, इतने बड़े करोडों-करोडों रुपये के मंदिर बन रहे हैं इसके साथ आप संमत है? देखो, मैं मंदिर का विरोध न करूं। मैं किसी सत्कर्म का विरोध न करूं लेकिन आपने

मुझे पूछा है तो तुम्हारे और मेरे बीच की बात है लेकिन सार्वजनिक कर रहा हूं। मैंने यहां भी कहा कि इतने बड़े-बड़े मंदिर! मंदिर होने ही चाहिए, लेकिन अबजों रुपये के मंदिर की जगह थोड़ा कम करीए! अने एमांथी आ डांग, आहवा, आ वलसाड जिल्लाना एक-एक गामडांमां राममंदिर, हनुमान मंदिर, मातानुं मंदिर न थई जाय? जयजयकार थई जाय। एणे गोवर्धन उपाड्यो तो आटलुं न उपाडे? उपाडवानो ज छे। व्रज चोरासीनी कथा करीशुं। कथा का नाम होगा 'मानस-परिकम्मा।' 'मानस' का अर्थ है हृदय और जहां हृदयेश्वर कृष्ण बिराजमान है उसी की परिकम्मा। गिरिराज हमारा हृदय है और उसी की परिकम्मा अथवा तो 'मानस' की खुद की परिकम्मा।

पितृऋण; ऐसे मैंने तर्पण की बात अभी की, भगवान राम ने किया। लेकिन आप कुछ न कर पाओ तो भी कलियुग में कोई चिंता नहीं। बस, जो गये हैं उसका सिमरन करो; उसके आदर्श का सिमरन करो। और जीवंत है उसकी सेवा करो। पितृ का दर्शन कहां-कहां होता है? एक तो हमारे शास्त्र के आधार पर पीपल में। पीपल के वृक्ष में पितृ रहता है। पीपल पितृओं का वृक्ष माना जाता है। तो पीपळा ने तमे पाणी पिवडावो। मात्र तर्पणना समये नहीं, सुकावा आव्यो होय त्यारेय तमे पाणी पिवडावो। जंगलनी सुरक्षा करो। अकारण झाडवां न कापो। आजे सापुतारामांय आ प्रश्न आवीने उभो छे के जंगल कपातुं रह्युं छे!

तुलसी और पीपल ये प्रतीक है वनस्पति पूजा के; ये हमारे पितृ है। उसके प्रतीक एक निमित्त बनाकर कहा गया कि पीपल के मूल में पानी डालो। लेकिन हर एक वृक्ष पितृ है; प्रत्यक्ष रूप में पितृ है। पीपल का तर्पण पानी डाल ने से होगा। लेकिन हर एक वनस्पति को पानी सींचो। आदिवासी समाज और जो उद्योगपति हो जो यहां आकर उद्योग करते हैं लेकिन वृक्षों का ध्यान रखे कृपया। वृक्ष की पूजा पितृतर्पण है।

दूसरा नाग पितृ है। कई परिवार में लोग श्रद्धा से कहते हैं कि हमारे पितृ नाग बनकर घूम रहे हैं। नागदेवताओ के मंदिर पितृओं के मंदिर माने जाते हैं। नागरूपी पितृओं। नाग का एक अर्थ होता है हाथी। नाग मानी हाथी। मजबूत, बलवान, सशक्त, सबसे बड़ा प्राणी हाथी; नाग मानी सांप। भलभला डरे उससे ऐसा बड़प्पन का प्रतीक है नाग। उसका तर्पण क्या? नाग का तर्पण मदारी तो दूध पिलाकर करे। लेकिन नाग दूध पीता है कि नहीं ये प्रश्न है। ऐसा कहा जाता है कि 'पयपान भुजंगानां सदैवं विषवर्धनं।' आप नाग को दूध पिलाओ तो भी विषवर्धन होता है। सांप सपने में आये या सामने दिखाई दे तो तलवट कूटकर खिलाने को कहा जाता था। वट याने अहंकार। तलवट का अर्थ व्यासपीठ करती है कि आपका तल जितना अहंकार को भी कूटना। नाग में रहे पितृ का तर्पण तलवट से होता है। उसका परिवार, उसकी परंपरा में आनेवाले संतान अहंकार को कूटे ये उनके पिता का सबसे बड़ा तर्पण है। नाग पितृ का प्रतीक माना गया। इसलिए अहंकारशून्य होना हमारे पितृ का तर्पण। महादेव को जल चढ़ाओ यह पितृतर्पण। शंकर जलधारा से जितना प्रसन्न होता है उतना कोई चीज़ से नहीं होता। शिव अभिषेक आप घर में करो ये पितृतर्पण है। शालिग्राम नारायण है। शालिग्राम का अभिषेक पितृतर्पण है।

पीपल, नाग, शिवलिंग; रोज़ 'रामायण' का पाठ करो यह पितृतर्पण है। 'तात मात सब बिधि तुलसी की।' जब-जब समय मिले केवल हरि, रामनाम का मंत्र जप करो ये पितृतर्पण है। अपने गुरु के वचनामृत यत्किंचित् हमारी औकात के अनुसार जितने समझे हो इतनी मात्रा में उसका अनुसरण करना ये गुरु स्वंय हमारा पितृ है। तो कितनी ही पितृशृंखला है। बाकी परंपरा में आप करते हो करिये ज़रूर। लेकिन सूत्र समझिये, जो हाज़िर नहीं है उसका स्मरण वोही उनका तर्पण है। जो मौजूद है उसकी सेवा यही उसका तर्पण है।

तो 'मानस-पितृदेवो भव।' की चर्चा चल रही है। आज मैं एक पितृस्तोत्र ले आया हूं। इसका भाष्य नहीं करूं। यद्यपि सब सरल है। 'मार्कण्डेय पुराण' में ये स्तोत्र है। 'पितृस्तोत्र' जिसका नाम है। उसी में पितृओं को ही समस्त देवताओं का शीर्षस्थ बताया है। ये हमारी भारतीय मनीषा है। 'मार्कण्डेय पुराण' के इस 'पितृस्तोत्र' का सार इतना ही है कि सब से उपर पितृ है। और सबसे उपर पितृ है, ऐसा जब आप इसमें पाठ करो तब समझना कि पितृ मानी शंकर; पितृ मानी शालिग्राम सब से उपर सर्वोपरी है। केवल उसका पाठ करें। पूरा नहीं बोलूंगा, बीचबीच में से लेकर बोलूं। पाठ हो जाये 'पितृस्तोत्र' का।

अर्चितानाममूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्।।
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा।
सप्तऋषिणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान्।।
मन्वादीनां च नेतारः सूर्याचन्दमसोस्तथा।
तान् नमस्यामहं सर्वान् पितृनप्युदधावपि।।
पजापतेः कश्पाय सोमाय वरुणाय च।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः।।
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्।।
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितृनहम्।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः।।
तेभ्योखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतामनसः।
नमो नमो नमस्तेस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः।।
इति पितृ स्तोत्रम् समाप्तः।

बधानुं तर्पण थई गयुं! लावो दक्षिणा! मारी दक्षिणा एटली ज के कोई कोईनी निंदा न करे। मारो नरसिंह मेहतो कही गयो के-

सकळ लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे।
वाच-काछ-मन निश्चल राखे, धन्य धन्य जननी तेनी रे।

तो 'मार्कण्डेय पुराण' का ये 'पितृस्तोत्र' सरल है। उसका भावार्थ इतना ही है कि सब कुछ तू है; इन्द्र भी तू है; मरीची भी तू है; अग्नि भी तू है, ऐसा उसका सारमात्र है।

हर एक वृक्ष को पानी पिलाना पितृतपर्ण है। भगवान महादेव का अभिषेक करना, जलधारी चढ़ाना, शालिग्राम का अभिषेक करना। पंचामृत की सगवड न हो तो कोई चिंता नहीं; जल का करो। मैने तो नव ही पितृचरण आपके सामने रखा। बाकी बीस पितृओं की बातें 'रामचरितमानस' में है। इनमें से हमने नव को खोजा है प्रधान रूप में। कल हम जनक महाराज की पितृवंदना कर रहे थे।

आज की पितृवंदना संक्षेप्त में है। ये पितृचरण है जटायु। जटायु राम का भी बाप है। मैंने पहले दिन कहा था कि अपने पितृचरण भगवान दशरथजी का तर्पण राम न कर पाये लेकिन जटायु का तर्पण किया है। जटायु पितृचरण की यात्रा, उसका दर्शन तुलसीदासजी यहां से कराते हैं। भगवान राम चित्रकूट में तेरह साल तक निवास करके अब यात्रा आगे करते हैं। बीच में मुनि शरभंग, मुनि सुतीक्ष्ण कुंभज के शिष्य, इन सभी महापुरुषों से मिलते हुए कुंभज ऋषि से भगवान विचार-विमर्श करते हैं 'अरण्यकांड' में। और फिर एक सूचना दी प्रभु को कि अब आपकी आखिरी साल की जो अवतारलीला है उसमें असुरों का निर्वाण करना है तो उसकी योजना आप आगे बढ़िए और वहीं से होगी। गोदावरी के तट पर पंचवटी में आप जाइए। और भगवान मुनि के मार्गदर्शन पर जब निकलते हैं दंडकारण्य। ये विस्तार दंडकारण्य मानते हैं। ये विस्तार शबरी का माना गया है। तो यहां की प्रजा में शबरी के प्रति बहुत आस्था है।

मैं फिर एक बार आप सबको यहां की जनता को कहूं कि सनातन धर्म की जो जड़ें हैं इनको पकड़ रखिए; थोड़े-बड़े लोभ में इधर-उधर मत जाओ। अपने निजधर्म में स्थिर रहना। अपना स्वधर्म निभाते रहना। शबरी के प्रति आपका इतना आदर है तो इस मूल तत्त्व को पकड़ रखना। सच्ची मधर ये है शबरी। ओर मधर- फाधर तो है सब अपनी जगह। पर हमारी सच्ची मधर तो शबरी है, उसका ध्यान रखना। हमारे पिता तो राम है। हमें ओर क्या ज़रूरत है? हमारा पिता शंकर है। हमारी मधर पार्वती है। मैंने एक कथा में कहा था कि हम लोगों को ये पाश्चात्य असर हो गई ना! मधर्स डे, फाधर्स डे, फ्रेन्ड्स डे, वेलेन्टाईन डे! मैं आपको सूचि दूं, भारत का और सनातन संस्कृति का फाधर्स डे है शिवरात्रि। विश्व में यदि हमारा भारतीयों का, हमारी सभ्यता का कोई फाधर्स डे है तो शिवरात्रि है। और हमारा कोई मधर्स डे है तो नवरात्रि है। ये हमारी माँ का दिन है। जो इस कथा के बाद उसी में हम जायेंगे, 'मानस-श्रीदेवी' विंध्यवासिनी। कौन हमारा मधर्स डे? तुम दुनिया का मधर्स डे मनाओ उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन तुम्हारी मधर जो है मूलतः उसको न भूलो। सीना तानकर जगत को कहो कि हमारा मधर्स डे नवरात्रि है। हमारा फाधर्स डे शिवरात्रि है। हमारा फ्रेन्ड्स डे हमनुमान जयंती है। हनुमान जैसा कोई सखा नहीं। सुग्रीव जैसे को जिसने भगवान तक पहुंचा दिया ऐसा कौन मित्र हो सकता है? फ्रेन्ड्स डे हमारा हनुमान जयंती। आपकी मधर शबरी है। मधर शबरी में आस्था रखोगे तो साचो, फाधर राम तुम्हारे

घर आयेंगे। और राम न आये तो रामकथा आयेगी। आप सोचिए। ये डांग विस्तार दंडकारण्य माना गया।

तो भगवान इस यात्रा में आगे बढ़े। फिर तुलसी जटायु की एन्ट्री बताते हैं यहां। गीधराज जटायु से बीच में मुलाकात हुई। और एक शब्द के प्रति आपका गुरुकृपा से ध्यान दोहराऊं। यहां लिखा है, भगवान राम-जानकी-लखन जा रहे थे और गीधराज जटायु से उसकी मुलाकात हुई, भेंट हुई; मिले, फिर अपनी ओर से प्रभुने क्या किया? 'बहु बिधि प्रीति बढ़ाई।' कैसा पितृ होगा? राम ने अपनी ओर से प्रेम बढ़ाया। जटायु का प्रेम बढ़ा? नहीं। ये कितनी बड़ी क्रांति है! जिसका परिचय तुलसी आगे देते हैं। 'गीध अधम खग।' उसके प्रति भगवान राम के हृदय में प्रेम बढ़ रहा है। प्रेम बढ़ रहा है संतान गीधराज के प्रति, अपने बाप के प्रति; ये मेरा पितृचरण है।

मेरे युवान भाई-बहन, आपको प्रेम यदि चाहिए और प्रेम बढ़ाना चाहते हो तो दो काम करो। एक, परमात्मा से सकाम भाव से प्रेम करोगे तो भगवान संसार हो जाएगा। परमात्मा के साथ जो सकाम भाव से जाता है उसने अपने परमात्मा को संसार बना दिया। और मेरी बात मानो तो यदि संसार के सामने तुम निष्काम भाव से जाओ तो संसार परमात्मा बन जाता है। यदि ईश्वर के पास सकाम वृत्ति से गये, हमारे रोग मिटा दो; हमारा ये हो जाए; अच्छा है, जीव है, मांगते हैं। लेकिन इन भाव से ईश्वर के पास जाना, ईश्वर संसार बन जाता है। संसार के सामने निष्काम भाव से यदि जाओ तो संसार भी हमारा ईश्वर बन जाता है। परमात्मा से प्रेम करे निष्काम भाव से और संसार की सेवा करे। दो ही काम करना, परमात्मा से प्रेम; संसार की सेवा। और प्रमात्मा को प्रेम करने के बाद और संसार की सेवा करने के बाद दोनों से कुछ भी न चाहो। न परमात्मा से कुछ चाहिए, न संसार से मुझे कुछ चाहिए; ये घटना घटे तो बिन मांगे परमात्मा भी तुम पर प्रेम करेगा और संसार भी तुम पर प्रेम करेगा। एक की सेवा करो; परमतत्त्व को प्रेम करो। फिर दोनों से कुछ नहीं मांगो।

प्रेम की अद्भुत परंपरा में, प्रवाही परंपरा में, जो सच्चा प्रेमी होता है उसको तो शांति और मुक्ति दोनों खाक लगती है। सच्चे प्रेमी शांति भी नहीं चाहता। उसको शांति होती भी नहीं। चीखना, रोना, तड़पना, सर पटकना, कोने में छिपकर हरि को याद करना। जो लोग कहेंगे, प्रेम करने से, भक्ति करने से शांति मिले, वो अधूरा प्रेमी है। शांति मिलेगी? नहीं। ये अशांति हजारों सुख से ज्यादा अच्छी है। मुझे कोई बताये कि सच्चा प्रेमी कहनेवालों को शांति मिली हो? न को। इल्ज़ाम मिलेगा; बदनामी मिलेगी। प्रेमी चैन की मांग करे तो प्रेम का अपमान कर रहा है। प्रेम तो सिसकना है; प्रेम तो रोना है। राम को प्रेम करनेवाली अयोध्या को चैन मिला? राम को प्रेम करनेवाले वियोगी भरत को कभी चैन मिला? सच्चा प्रेमी ये है जो शांति को नहीं चाहता। शांति चाहना, कुछ भी चाहना प्रेम के बदले में वो प्रेम का अपराध है; ये प्रेम की कमी है। प्रेम में न शांति मांगी जाती है, प्रेम में न मुक्ति मांगी जाती है।

मुझे कभी किसीने पूछा था, बापू, ज्ञान और भक्ति में फ़र्क आपकी दृष्टि से बता दो। मैंने कहा, ज्ञान में आदमी को खुद की याद होती है, स्वरूप स्मरण होता है। और प्रेम में स्वरूप का नहीं, सर्वेश्वर का स्मरण होता है। ज्ञान खुद में डूबता है। ज्ञानी खुद की स्मृति में रहता है, मैं कौन? और प्रेम खुद का स्मरण नहीं करता, हरि का स्मरण करता है, हे हरि! हे हरि! ज्ञान में स्वयं का स्मरण है। भक्ति स्वयं की कोई चिंता नहीं करती। भक्ति कहे, मेरा कृष्ण प्रसन्न रहे; मेरा गोविंद खुश रहे। ज्ञान-साधना एक कर्म है। दीप जलाने में बहुत कर्म करने पड़ते हैं, तब जाके ज्ञानदीप जलता है। भक्ति तो किसी की कृपा का फल है। किसी की कृपा का परिणाम है हरिभक्ति।

तो राम की ओर से प्रीत प्रभु ने बढ़ाई गीधराज से। और ध्यान देना, सच्चा मनुष्य वो ही है जो अधम है, जो गिरे हुए है उसकी ओर प्रीति बढ़ाए। सक्षम हो उसके साथ तो सब दोस्ती करे लेकिन जो अभावग्रस्त हो उसके साथ प्रीति बढ़ाए, ये क्रांति है। और वो भी पक्षी है। गोस्वामीजी ने दशरथ को राम का पिता बताया है और जटायु को राम पिता कहते हैं। तो दशरथ और गीधराज में कुछ साम्य और वैषम्य होना चाहिए। ये खोजना चाहिए रामायणियों को कि गीध को क्यों बाप कहा? एक सिद्ध बाप है। दशरथ सिद्ध है; वेदों के तीनों खंड लिए बैठे ये सिद्ध बाप है; एक गीध बाप है। तो दोनों का मिलन कैसे

हो सकता है? कहां गीध? कहां सिद्ध? लेकिन दोनों को पिता कह दिया। दोनों को पितृचरण कह दिया। तलगाजरडा को लगता है, इसके पीछे कुछ रहस्य है। पिता के प्रति राम का प्रेम अद्भुत है ही। लेकिन आज जो दूसरा पिता है, उसके प्रति भगवान प्रेम ओर बढ़ाए जा रहे हैं। अधमता गीध की छूट गई। मुझे तो लगता है कि राम ने उस पर प्रेमदृष्टि करके प्रेम बढ़ाया। बाप ने कभी मांसाहार नहीं किया होगा। लिखा नहीं है। उसकी चोंच जो मांस में, जीवों में जाती थी, मुझे लगता है कि राम के स्पर्श से गीध की चांच भी साच बन गई थी। जैसे दशरथ में सत्य, वैसे गीध में सत् आ गया।

बड़ों का मिलना अपने आप क्रांति कर देता है। प्रेम बढ़ाओ दुनिया में, कोई अधम नहीं मिलेगा आपको। तुम्हारे प्रेम के अभाव में जगत दीन-हीन दिखता है आपको। प्रेम बढ़ाओ बस। कोई कुरूप नहीं लगेगा। कोई पतित नहीं लगेगा। तुम्हारा कुछ घटेगा नहीं। सामनेवाला भर जाएगा। इसलिए मैं रामकथा को प्रेमयज्ञ कहता हूं। अपनी ओर से प्रेम बढ़ाते जाओ। तुम्हारे घरमें सास-बहू, भाई-भाई, पिता-पुत्र कोई अनबन होती हो तो डांटना थोड़ा बंद करो। गुस्सा करना थोड़ा बंद करो। प्रेम बढ़ाओ। वो नफ़रत करे, करे। हमारी ओर से प्रेम बढ़े, बढ़े, बढ़े। वो अधमता बरकरार रखे; हम अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करे। एक बहुत बड़ी फोर्म्यूला है यदि मेरा समाज सीखे तो।

एक प्रयोग तो करो। कुछ भी सामनेवाला करे, प्रेम बढ़ाओ। अधमता चली जाएगी। वो सामेवाले को लगेगा कि इतना प्रेम करनेवाले के सामने मैं बेइमानी करूं? इतना प्रेम करनेवाले को मैं धोखा देता हूं? इतना प्रेम करनेवाले को मैं कैदी बना देता हूं? इतना प्रेम करनेवाले पर मैं अंकुश लगा देता हूं? इतना प्रेम करनेवाले से मैं डरता क्यों हूं? मैं तो निर्भय हो जाऊं। ये प्रेम करेगा। हमने बहुत विधियां दी, प्रेम बहुत कम दिया। सबको विधियां दे दी! ये करो, ये करो! इसी में डूबो दिया आदमी को! इसमें एक असली वस्तु दी ही नहीं! सब दान सरल है, प्रेमदान कठिन है।

भगवान वहीं से गोदावरी तट पर पंचवटी नामक स्थान में आये। जो श्रेष्ठ व्यक्ति होती है उसका एक लक्षण 'मानस' से पकड़ो। किसी भी श्रेष्ठ दानी होगा वो जहां जाएगा वहां सबको कवर कर लेगा। इसलिए मेरे राघव दो स्थान पर जम गये। चित्रकूट आये तो छा गये मेरे राम। जिसमें विशिष्टता होगी, कहीं भी जाएगा, छा जाएगा। वो जहां भी रहेगा, रोशनी लुटायेगा। बसीम बरेलवी साहब का यह शे'र, वैश्विक शे'र बन गया-

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटाएगा,
चरागों को अपना कोई मकां नहीं होता।

चराग जहां भी जाएगा रोशनी लुटायेगा। भगवान राम, लक्ष्मण और जानकी पंचवटी में निवास करने लगे। वहां से फिर अनुसंधान लेने के लिए सीताहरण तरफ़ जाना पड़ेगा। जानकी का अपहरण होता है। और रावण उसको लेकर भागता है। और जटायु से फिर दर्शन तुलसी कराते हैं पितृचरण का। और जटायु को राम ने पितातुल्य आदर दिया तो ये रिश्ता निभाया। वहां से सीधा जटायु का स्वरूप पिता का आ गया। जैसे रावण सीता को लेकर निकला ही, अकुला रही है जानकी तो जटायु ने देखा तो ओह! ये तो मेरी पुत्रवधू को लिए जा रहा है! देखो, बाप का संबंध आ गया। ये तो मेरे राम की पत्नी है। इसलिए पिता का संबंध होते ही संबोधन ही बदल गया! मैं पूरे असुर कुल के खानदान को मिटा दूं! ये जो पितृचरण जटायु। और जैसे जटायु आया है, रावण को लगा कि ये ईन्द्र का वज्र तो नहीं आ रहा मेरे उपर? ये कौन आ रहा है? शंकर का त्रिशूल तो नहीं आ रहा? पितृचरण का आदर्श निभा रहा है।

दोनों में द्वंद्व युद्ध होता है। बेटी को एक ओर सुरक्षित कर देता है और द्वंद्व युद्ध में उतरा है। पता था कि रावण के सामने मेरा पराजय अथवा तो मेरी मृत्यु निश्चित है। लेकिन उसका मतलब ये नहीं कि मेरा दायित्व चूक जाऊं? चोंच मार-मारकर एकबार रावण को मूर्छित कर दिया। रावण समझ गया कि ये आदमी मुझे मार तो नहीं पाएगा लेकिन आगे जाने भी नहीं देगा। और आगे न बढ़ पाऊं तो ये तपस्वी दोनों में से कोई भी आ गया तो फिर मेरा तमाम हो जाएगा। इसलिए उसने खडग खींचा और जटायु की दोनों पांखें काट दी। राम की अद्भुत करणी को याद करते जटायु धरती पर गिर गये। पुनः जानकी को रथारूढ़ करके रावण जाता है। अशोक वृक्ष से नीचे यत्नपूर्वक जानकी को रख दी रावण ने।

सीता अपहरण हुआ। यहां मारीच को निर्वाण देकर मायामृग को गति देकर भगवान लौटते हैं। सीताविहीन कुटियां देखी। प्रभु नरलीला करते हैं। मानव की तरह प्रभु रोने लगे। सीता की खोज करते हुए भगवान आगे बढ़े। इतने में रास्ते में गीधराज जटायु आखिरी सांस ले रहा है। 'सुमिरत राम चरन की रेखा।' जटायु को रेखा क्यों याद आई कि मेरी बेटी का अपहरण नहीं होता यदि उसने खुद ने दोरी हुई रेखा न नांघी होती तो। ससुर तो स्मरण करेगा। डांटेगा नहीं लेकिन स्मरण तो करेगा कि ये पुत्रवधू ने खुद ने नांघी। कोई माई का लाल नहीं आ सकता था। लेकिन खुदने अपनी रेखा को नांघ ली। फिर अपहरण हुआ। इसी रेखा का स्मरण हुआ।

अपनी-अपनी रेखा निर्मित करो, कोई माई का लाल अंदर नहीं आएगा। तभी तुम्हारा अपहरण होगा जब तुम रेखा को मानोगे नहीं। तब कोई जानकी हो तो भी नहीं बच सकती। ये रेखा लक्ष्मणजी ने रखी थी और कहा कि माँ, आप इससे बाहर मत जाना, कोई अंदर नहीं आएगा। ये स्वयं जानकी ने रेखा कुबूल की थी। लेकिन जब मायावी रूप आदमी का होता है तब सोचता है कि मुझे नांघने में कौन रोकता है? क्योंकि मायारूप सीता है, असली सीता नहीं है। माया खोटा चिंतन, खोटा दर्शन लाने देती है और तब आदमी रेखा को नांघना उसको भी अपना सही कदम मान लेता है। फिर सीता अपहृत हो जाती है।

प्रभुने जटायु को देखा है; पितु को रक्तरंजित देखा। भगवान ने जाकर पहला काम किया जटायु के शरीर पर पितृचरण के मस्तक पर हाथ दिया। भगवान ने उसके सिर पर हाथ रखा। पीड़ा गई। कहा कि आपकी ये दशा किसने की? तब पूरी कथा की। सीता को लेकर रावण जा रहा था कुरुरी की तरह। देखो, ससुर को बेटी कैसी लगी? 'कुरुरी' शब्द है। कुरुरी यानी कुंज पक्षी। कुंज की जो लाईन निकलती है ना! उनकी एक पर्टिक्यूलर आवाज़ होती है, इसमें दर्द होता है। मैंने कोशिश की राघव, लेकिन रावण ने मेरी पंख काट दी। लेकिन मुझे आनंद है कि मैं जितना कर सका इतना किया है; जान की बाजी लगा दी। मेरी बेटी का अपहरण हो जाए, मुझे जीवित नहीं रहना चाहिए। लेकिन मैं जीवित हूं दुनिया की दृष्टि से ये थोड़ा ठीक नहीं लगे लेकिन मैं टीका हूं, बामुश्किल प्राण बचाए क्योंकि मैंने बेटी का दर्शन किया है लेकिन एकबार फिर से तेरा भी दर्शन करना था। इसलिए मैंने प्राण रोके हैं। भगवान ने जटायु को गोद में लिया। और भगवान की गोद में पितृचरण जटायु ने प्राणत्याग किया। उद्धार हुआ। प्रभु ने अपने हाथों से अग्निसंस्कार किया।

क्यों राममंदिर गांव-गांव है? क्यों सुबह-शाम वहां आरती उतरती है? राम ने ये आदर्श प्रस्थापित किया। आखिर में जब उसका अग्निसंस्कार हुआ और पांचभौतिक काया जल गई उसके बाद जटायु हरिरूप बनकर प्रगट हुए। चर्तुभुज रूप में राम के सम्मुख प्रगट हुए हैं। हरिरूप लिया और परमात्मा की सुन्दर स्तुति की। जटायु को परमात्मा ने सारूप्य मुक्ति का दान किया है। चतुर्भुज नारायण के रूप की प्राप्ति हुई है। 'गीध गयउ हरिधाम।' उसकी अंत्येष्टि आदि की क्रिया राम ने अपने हाथों की। तुलसी कहते हैं, अधम पक्षी, आमिष भोगी पक्षी उसको परमात्मा ने पिता कहकर उसको योगी लोग याचना करे तो भी न मिले ऐसी परमगति का दान किया। जटायु है 'मानस' का एक पितृचरण। अब दो पितृचरण बाकी है; एक बालि और दूसरा रावण। उसकी चर्चा कल संक्षेप में आगे करते-करते परसों नव दिवसीय कथा को हम विराम देंगे।

पितृ का स्मरण करो। जो नहीं है उसका स्मरण करो। इस श्राद्ध के बहाने, उसके सुकर्मों के बहाने, उसने तुम्हें जो संस्कार दिये हो उसी के बहाने, उसने अच्छे काम किये हो उसको आगे बढ़ाने में जो हाज़िर नहीं है उसका स्मरण करो। जो है उसकी सेवा करो। तुम जो नहीं है उसकी तो बहुत चिंता करते हो क्योंकि ये डांटेगा नहीं, कुछ करेगा नहीं, कुछ भी करो। श्राद्ध करो, न करो लेकिन जो सामने बैठा है, जो तुम गलत राह पर जाते हो तो सविनय रोकता है कि बेटा, ऐसा मत बोल, उसकी सेवा करो। जो हाज़िर नहीं है माता-पिता उनका सिमरन करो। और जो हाज़िर है उनकी सेवा करो।

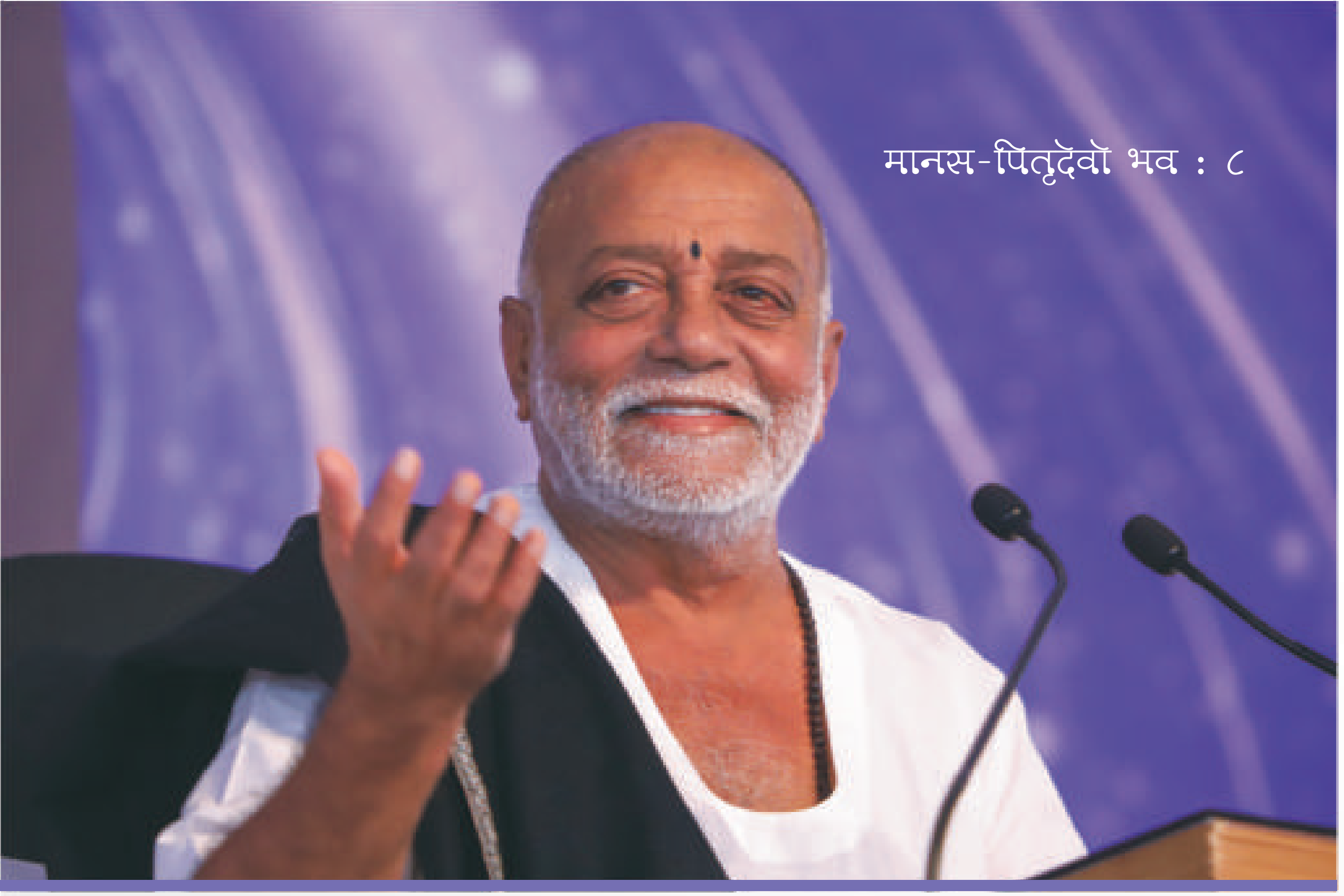

वह पितृचरण है जो अपने पुत्र को परम के हाथ में समर्पित करता है

'मानस-पितृदेवो भव।' पितृपक्ष अंतर्गत 'मानस' के आधार पर जिसकी हम पितृचरण वंदना कर रहे हैं। मेरी व्यासपीठ ने 'रामचरितमानस' से नव पितृओं का वर्णन किया प्रधानरूप में और उसी की वंदना संवाद के रूप में हो रही है। कुछ आगे बढ़ें इससे पूर्व हमारे परम स्नेही नीतिनभाई जो सेवा के लिए केवल सेवा कर रहे हैं। हर एक कथा का सारदोहन 'रामकथा' नामक एक पुस्तिका में संगृहित करके नीतिनभाई और उसकी पूरी सहयोगी टीम केवल हेत के कारण यह कर रहे हैं। और इस कथा में बिहार में गाई गई, वीरायतन में गाई गई रामकथा 'मानस-महावीर' का आप सबके लिए समर्पण हुआ। ओर कुछ ना कहते हुए मैं मेरी अति प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि ये टीम इस काम में लगी है।

आप सब जानते हैं, मैं व्यवस्था का आदमी नहीं हूं। मैं याद करूं कि ये जो कथा का सारदोहन होना चाहिए ये मूल में बीजतः रूप में विचार, अब हमारे बीच में नहीं है, हरीन्द्रभाई दवे का था। इतने बड़े सम्पादक, साहित्यकार, कवि, आपका यह विचार था। मुझे एक बार कहे, बापू, ऐसा करना चाहिए और आप कहो तो वो सेवा मैं करूंगा। सुरेशभाई दलाल भी साथ में उपस्थित थे; उसने सपोर्ट किया। लेकिन मैंने कहा कि मानसिकता व्यवस्था की नहीं होने के कारण शुभ प्रवृत्ति भी कब फंसा दे कोई ठिकाना नहीं! फिर भी 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।' ईश्वर कहते हैं कि मेरी अध्यक्षता में यह सब चल रहा है; तुम भी मेरे साथ-साथ घूमो! इस राज़ को जो साधक समझ लेता है वो कोई भी प्रवृत्ति में जुड़ने के बाद भी निवृत्ति का स्वाद ले सकता है।

युवान भाई-बहन, यह मंत्र को याद रखना, 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।' कृष्ण नाम लेने से बाप याद आता है। इसके समान कौन पिता है? हम वर्गीकरण कर सकते हैं पितृचरण का। कई पिता-पितृचरण जन्मदाता होते हैं। बहुधा हम सबके कोई पिता है। इनमें से कोई-कोई पालक पिता होते हैं। जिन्हों ने जन्म नहीं दिया लेकिन पाला बहुत; शायद जनम देनेवाला भी न पाल सकता यदि ये पालक ना मिलता। और इसका आदर्श दृष्टांत जगत के सामने है भगवान कृष्ण। उसको जन्म-पिता के रूप में तो वसुदेव मिले लेकिन पालक पिता के रूप में बाबा नंद मिले। जन्म देनेवाला बाप तो बंदी था; जेल में था। पालन करनेवाला बाप केवल स्नेह-बंधन में बंधा था, बाकी मुक्त था।

पूरे संसार में जो पिता और संतान का संबंध हैं, इसमें पिता जन्मदाता है। तुलसी भी कहते हैं, 'जनम हेतु सब कहँ पितु माता।' 'पितु' शब्द पहले लिख दिया, फिर 'करम सुभासुभ देइ बिधाता।' तो एक होता है जन्म-पिता। एक होता है पालक पिता। एक होता है धर्म-पिता। हम नहीं कहते, यह मेरा धर्म का भाई है, मेरी धर्म की बहन है, ये मेरा धर्म का चाचा है। ऐसे ख़ूबसूरत शब्द लगाने के बाद निर्वहन इमानदारी से करना। शब्द बड़ा धोखा दे सकता है खुद को ओर समाज को! ये मेरी धर्मभगिनी है; ये मेरी धर्म-चाची है; वैसे कोई कहते हैं, ये मेरे धर्म-पिता है। अच्छा शब्द है। कई पिता अध्यात्म-पिता होते हैं जिसे कोई तथाकथित धर्मों से लेनदेन नहीं हो। सबसे उपर उसका पितामह जो अध्यात्म-पिता है। अध्यात्म-पिता का ओर किसी बातों से संबंध नहीं होता है। जहां तक तलगाजरडा का मानना है, उसका एक ही संबंध है और प्रेमसंबंध।

तो एक होता है जन्म देनेवाला पिता; एक होता है पालक पिता; एक होता है धर्म-पिता; एक होता है समकालीन समय में नीति-नियमों में आबद्ध पिता; जेसे भीष्म। उस काल के नीति-नियमों के कारण आबद्ध है; बोल नही पा रहा है। बोलना चाहिए था। तलगाजरडा उसकी दाढ़ी खींच सकता है! तू यदि मेरा दादा है, तू यदि मेरा पिता है तो हम नासमझ को समझा, हमें पूछने का अधिकार है; तब तेरी जिह्वा बंद क्यों थी? ऐसी कौन मजबूरी थी? ऐसी किस प्रकार की प्रतिबद्धता थी? हे गंगासुत, हमें जवाब मिलना चाहिए। लेकिन समाज में कई पिता ऐसे भी होते हैं, जो हमें नीति सिखाते रहते हैं। कोई-कोई पिता घातक होते हैं, जैसे हिरण्यकशिपु। हिंसक बाप है, घातक पिता है। मुझे तो लगता है, ऐसे पिता जो घातक है, जो हिंसक है, आबद्ध है, स्वयं मुक्त नहीं है, उसका श्राद्ध करना चाहिए। जो मुक्त है उसका कौन श्राद्ध करे? वो तो खुद का अपना श्राद्ध करके गया है।

मैं मेरे युवान भाई-बहनों को कहूं कि जिस व्यक्ति में इतनी बातें दिखाई दे, क्या ज़रूरत है उसको श्राद्ध की? ये वटवृक्ष है, पीपल का वृक्ष है। पीपल का वृक्ष चौबीस घंटे आक्सिजन देता है। बाप वो है जो हमें चौबीस कलाक आक्सिजन दे। और ऐसे पिता के श्राद्ध की क्या ज़रूरत है? शरीर जिसका श्रमी हो और मन जिसका संयमी हो। बाप भी जानता है, जगत भी जानता है कि बाप के विहार के कारण संतान पैदा हुए। लेकिन फिर भी बाप का मन संयमी होना चाहिए। कर्म करे, श्रमी हो। हां, एक उम्र हो जाए तब बाप को श्रम नहीं देना चाहिए। तब संतानों का दायित्व है। पिता श्रमी होना चाहिए। पिता मानसिक रूप में संयमी होना चाहिए। पिता बौद्धिक रूप में विवेकी होना चाहिए। और पिता अभिमानी नही होना चाहिए। अहंकार बिलग वस्तु है, अभिमान बिलग वस्तु है। अहंकार शिव है। वैश्विक अहंकार भगवान महादेव है; वो शोक दायक नहीं है, वो शोक विनाशक है। लेकिन हमको जो शिवतत्त्व है, उसका अहम् आ जाता है, उसका अभिमान आ जाता है, उसी की आलोचना है।

कल हमने जटायु की पितृवंदना की है। अब तारा का पति और अंगद का पिता, सुग्रीव का भ्राता एक विशिष्ट व्यक्ति 'मानस' के 'किष्किंधाकांड' का वालि, उसका दर्शन करना है; उसी पितृचरण की वंदना करनी है। पहले मैं ये कहूं वालि के बारे में कि वालि एक ऐसा पात्र है, ऐसा व्यक्तित्व है कि उसका समग्र जीवन चार स्तंभ पर आश्रित है। मेरी तलगाजरडी आंख को चार स्तंभ पर वालि का पूरा व्यक्तित्व दिखता है। इसमें दो स्तंभ अच्छे हैं, दो स्तंभ ठीक नहीं है। लेकिन है चार स्तंभ पर वालि बिराजमान। कई लोगों में अच्छाई की मात्रा ज्यादा होती है, बुराई की मात्रा कम होती है। होती तो सबमें है। कईयों में बुराई की मात्रा ज्यादा होती है, अच्छाई की मात्रा कम होती है। वालि तो मिश्रित है। ब्रह्मा की सृष्टि गुण और अवगुण से मिश्रित है। यहां पाप है तो पुण्य भी है। यहां देव है तो कसाई भी है। यहां स्वर्ग है तो नर्क भी है। यहां नर है तो नारी भी है। पूरा बिधि प्रपंच सटा हुआ है; मिश्रित है; विवेक से उसका क्षीर-नीर बिलग करना होता है।

तो वालि के जीवन की जो आधारभूत चार वस्तु है; एक ऐसा बाप जिसकी चार बातें जो आधारभूत है उसमें दो ठीक है, दो अठीक है। वालि परमात्मा को उसकी

पत्नी का मार्गदर्शन पाकर स्वीकार नहीं करता। कई पति ऐसे घमंडी होते हैं तो पत्नी की बात कुबूल ना करे, क्योंकि अपना ईगो हर्ट होता है! वालि अंदर से तो समझता है कि ये जो बोल रही है वो सच है। वालि की तकलीफ़ ये है कि कुबूल नहीं कर रहा। लेकिन समझ जाए तो भी वो अच्छी बात है; ये अच्छाई है; ये स्तंभ ठीक है मेरी दृष्टि में। वालि ईश्वर को सम समझता है ये अच्छी बात है। परमात्मा को जो सम समझे ये अच्छा गुण है। और ये सिखाया था उसको उसकी पत्नी ने। तो पत्नी ने उसको बोध दिया; जिससे वह सीखा वही सीखा हुआ वाक्य अपनी पत्नी से कहता है, 'कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।' हे डरपोक स्त्री, वालि कहता है, राम के बारे में तो मैंने जाना है, समदर्शी है; ये विषम नहीं हो सकता, असम नहीं हो सकता। ये वालि के जीवन का एक आधार स्तंभ अच्छा है। वालि के जीवन का दूसरा खंभा मेरी समझ में बहुत प्यारा है कि वो परमात्मा धर्म के कारण अवतार लेते हैं, इस सूत्र का जानकार है।

घर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।
मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।

तो अपनी पत्नी के सामने यह आदमी कहता है कि राम समदर्शी है, यह अच्छा स्तंभ है उसका। और राम के सामने कहता है कि आप धर्म के लिए अवतरित हुए हैं; तो उसकी जानकारी या उसका चिंतन अच्छा है। तो दो खंभें अच्छे हैं उसके। लेकिन दो जो ओर खंभें है, वो जरा ठीक नहीं है। और वो है-

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना।
नारि सिखावन करसि न काना।।

एक तो तुझ में मूढ़ता है ये तेरा खंभा थोड़ा अठीक है। और दूसरा, तुझ में अभिमान है, ये खंभा थोड़ा खराब है। लेकिन ये फिफ्टी-फिफ्टी है। अच्छा बाप लगता है; पचास-पचास प्रतिशत में उसका जीवन बांधा गया है। दो अच्छे स्तंभ। दो बुरे स्तंभ। ये मूढ़ है चलो माना; ये अभिमानी है चलो माना लेकिन साथ-साथ समदर्शी राम के बारे में उसको जानकारी है और परमात्मा अवतार हेतु को वो जानता है, तो ये बड़ी अच्छी बात है।

तो वालि एक ऐसा पितृपुरुष है; कमजोरियां बहुत है लेकिन एक अर्थ में देखें तो सुग्रीव से कई ज्यादा अच्छा है। सुग्रीव तो बिलकुल डरपोक, भागनेवाला आदमी है बस। थोड़ा कष्ट हुआ, भागा! युवान भाई-बहन, तुम्हारे पर कोई समस्या आए तो भागो मत; ठहर के देखो कि समस्या समस्या है कि नहीं? पहले जांचो कि तुम समस्या को समस्या मान बैठे हो, पहले पकड़ो कि सही है या नहीं? बिना समस्या इतने गंभीर हो जाते हैं! तो वालि का दर्शन हमें बहुत प्रेरणा देता है। कमज़ोरियां तो है लेकिन सुग्रीव जितनी नही है। वालि जो पितृचरण के रूप में मैं कह रहा हूं वहां वालि का जीवन दर्शन शुरू होता है इस पंक्ति से-

नाथ बालि अरु मैं दौ भाई।
प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।

'किष्किन्धाकांड' में भगवान यात्रा करते-करते रिष्यमूक पर्वत पर पहुंचे। सुग्रीव से मैत्री हुई और फिर भगवान पूछते हैं कि भाई सुग्रीव, तू तो किष्किंधा का आदमी है और यहां क्यों रहता है? तो सुग्रीव अपनी आत्मकथा कहता है कि प्रभु, वालि मेरा जयेष्ठ बंधु, मैं छोटा भाई। हमारे दोनों में बहुत प्रीत थी। लेकिन एक बार मायावी नाम का एक महिसुत राक्षस हमारे यहां आया और रात्रि में उसने हमको ललकारा। लेकिन वालि को परास्त नहीं कर पाया। तो उसने अर्ध रात को हमारे दरवाजे पर दस्तक दी और वालि सीधा गदा लेकर दौड़ा। मुझे भी लगा कि मेरा भाई है, मुझे भी उसके साथ-साथ जाना चाहिए। विषम परिस्थिति; रात्रि का मामला है; कौन है, क्या है? तो आगे मायावी और पीछे वालि दौड़ा। तो एक पर्वत की गुफा थी उसमें वो मायावी घुस गया। वालि ने कहा कि राक्षस अंदर चला गया है। सुग्रीव, तू यहां बैठ; मैं अंदर जाऊं। कम से कम मेरा निर्वाण हो जाए तो तू किष्किंधा की बागडौर संभालना। यहां तू रहना। पंद्रह दिन मेरी प्रतीक्षा करना, वालि ने कहा। पंद्रह दिन में मैं यदि बाहर ना आऊं तो समझ लेना, तेरा जयेष्ठ बंधु मर गया। फिर जाकर तू संभाल लेना। प्रभु, मैं वहां गुफा के द्वार पे था। वालि ने मुझे पंद्रह दिन की मुदत दी थी; तो प्रभु, मैं पंद्रह दिन के बदले एक महिना रुका वहां। अवधि तो पूरी हो गई। वालि तो बाहर नहीं आया लेकिन रक्त की धारा बाहर आई! अंदर इतना धमासान हुआ होगा कि रक्त बाहर आ गया! मुझे लगा कि अब मेरा भाई मारा गया लगता है। और अब मैं यहां रहूंगा तो बाहर आकर मुझे भी मार देगा। तो फिर मैं वहीं से भागा! और प्रभु, मैं भागा तो भी मुझे

लगा कि वालि तो मर गया लगता है और ये राक्षस बाहर निकलेगा तो मुझे सिंहासन पर पकड़कर मारेगा! इसलिए मैं जब गया तो गुफा के द्वार पर एक बड़ी शिला रखता गया कि ये बाहर ना आ सके।

मैं राजगादी पर बैठा। सबने कहा तो तिलक हो गया। जैसे मैं राजा हो गया इतने में एक-दो दिन के बाद वालि जीवित निकला और पर्वत की गुफा के द्वार पर बड़ी शिला उसने पाई। और चरण प्रहार से उसने शिला को उड़ा दिया। बाहर निकला और आया। अरे, डरपोक! सत्तालोलूप! सत्ता प्राप्त करने के लिए तूने प्रतीक्षा न की? बोले, मैंने तो पंद्रह दिन के बदले तीस दिन तक प्रतीक्षा की। चलो माना कि तूने इतना किया लेकिन भागा तो शिला क्यों रख कर भागा? बोले, मुझे लगा कि वो मुझे भी मार देगा। और उसने सुग्रीव को पीटा और कहा कि मेरे राज्य से भाग जा! अब मैं तेरे पीछे हूं। जहां भी मेरे हाथ में आया तो मोत! प्रभु, मेरा राज छिन लिया और सर्वस्व छिन लिया और मेरी पत्नी को भी छिन लिया। वालि की पहुंच सब जगह है; एक ये पर्वत पर वालि नहीं पहुंच पाता क्योंकि वालि को श्राप है कि इस पर्वत पर आए तो उसकी मौत हो जाएगी। तो यहां मैं सलामत हूं।

पंडित रामकिंकरजी महाराज ने उसका अर्थ किया कि रिष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव बैठ जाए तो वालि उसका कुछ नहीं कर सकता इसका मतलब ये जो शिखर है वो सत्संग का शिखर था। और सुग्रीव वहां चढ़ गया और वालि पीछे गया लेकिन वो उपर चढ़ गया तो वालि नहीं जा रहा; उसको श्राप था, मैं मर जाऊंगा उपर जाऊं तो। 'विनयपत्रिका' का अर्थ लेकर पंडितजी महाराज समझाते थे कि 'करम कपिस बाली बली।' बलवान वालि कर्म का प्रतीक है, ऐसा जो आध्यात्मिक रूप 'विनयपत्रिका' में दिया है। वहां का अर्थ पंडितजी ने उठाया कि वालि कर्म है और कर्म हमारा सबका पीछा करता है। हम सबका पीछा कर्म कर रहा है। कर्म बलवान है। कर्म पिता है।

याद रखना सूत्र के रूप में; कर्म है पिता, कृपा है माता। कर्म पीछा करता है, कृपा दुलार करती है। कर्म भगाता है, कृपा गोद में लेती है। ये आध्यात्मिक माता-पिता है। कृपा को मेरी व्यासपीठ माता कहती है; कर्म को पिता, पितृचरण। हमारा पीछा कर्म करता है, हम भागते जा रहे हैं। लेकिन वालि इस रिष्यमूक पर्वत पर नही जा पाया। रिष्यमूक पर्वत है सत्संग। जीव जब सत्संग की टोच पर चढ़ जाता है तब कर्म हमारा पीछा नहीं कर सकता। कर्म पीछा कर रहा है। इसलिए 'रामायण' में आया, घड़ी-दो घड़ी सत्संग की भी महिमा है लेकिन 'करहु सदा सत्संग।' जो सदा सत्संग करता है उसको कर्म कुछ नहीं कर सकता। इस सुंदर अर्थ पर जीवन रहा।

तो प्रभु, ये वालि यहां श्राप के कारण आ नहीं सकता फिर भी मैं भयभीत हूं। मित्र के दुःख को जब सुना प्रभु ने तो मित्र के नाते भगवान ने प्रतिज्ञा की उस समय 'सुनु सुग्रीव...' अब मैं भी थोड़ा एड करूं कि सुग्रीव सत्संग के शिखर पर बैठा है। जो सत्संग में बेठता है तो कभी न कभी राम वहां आ जाता है। राम मानी विश्राम; राम मानी प्रसन्नता; राम मानी निर्भयता। राम को केवल एक फ्रेम में मढ़ मत दो। कोई न कोई हनुमंत जैसा संत राम की भेंट करा देता है। तो राम उपर पहुंच गए हैं बिना प्रयास सुग्रीव के और भगवान ने प्रतिज्ञा की, 'सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।' एक ही बाण से मैं वालि को मार दूंगा। भगवान ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की और फिर तुलसीदासजी ने 'किष्किन्धाकांड' में पूरा मित्राष्टक लिख दिया। आठ पंक्तियों में मित्र के लक्षण बताए कि मित्र कौन है?

जेन मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।

मित्र वो है जो मित्र के सुख-दुःख में भाग ले; जो मित्र के दुःख से दुःखी ना हो ऐसे मित्र का चेहरा देखना पाप है। खुद का दुःख मेरु के समान हो तो भी उसको रजकण समान समझे और मित्र का दुःख छोटा-सा हो, पर्वत जितना समझे, मित्र की सहाय में चले। 'बिपति काल कर सतगुन नेहा।' अपने मित्र पर बहुत संकट पड़े तब सो गुना प्यार करे। 'श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।' वेद कहता है, यही साधु-मित्र के लक्षण है। आगे से मीठे-मीठे बोल बोले और पीछे से लुच्चाई करे, ऐसे कुमित्र को तो छोड़ने में ही भलाई है। आठ पंक्तियां में मित्राष्टक की चर्चा की है। भगवंत प्रेरणा से उस पर एक कथा भी हो चुकी है, 'मानस-मित्राष्टक।'

भगवान ने प्रतिज्ञा कर ली। और सुग्रीव को कहा, चल, ललकार वालि को। सुग्रीव तो डरपोक आदमी है। कर्म का मुकाबला या तो सत्संग में आ नहीं सकता। लेकिन हम कायम सत्संग में थोड़े रह सकते हैं? धंधे में जाना पड़ेगा; अपने काम में जाना पड़ेगा; पढ़ाई में जाना पड़ेगा। तो क्या करना? जब कर्म में प्रवृत्त होना है तो

हरिस्मरण को साथ रखकर, राम को साथ लेकर जाना ताकि कर्म परेशान न कर सके, थोड़ी राहत मिले।

गांधीबापू को पूछा विनोबाजी ने, राम को निरंतर जपने से आपको क्या मिला? तो गांधी ने कहा, प्रज्ञावान है विनोबाजी आप। आप कुबूल करेंगे कि नहीं ये मुझे खबर नही लेकिन आप मुझे पूछते हैं तो निरंतर रामस्मरण करने से मुझे तीन वस्तु मिली। गांधीबापू कहते हैं, एक भयमुक्ति मिली। और मैं बहुत दावे के साथ कहूंगा, जो निरंतर हरिनाम की स्मृति रखेगा उसको भय से मुक्ति हो जाएगी।

कोई साधुपुरुष को संकट पड़ता है तो साधु तो अपने संकट के लिए ईश्वर को भी फ़रियाद नहीं करेगा; वो ही साधु है। ईश्वर को फरियाद करे वो साधु काहे का? लेकिन किसी रामप्रेमी, अखंड हरिस्मरण करनेवाले कोई बुद्धपुरुष पर जब विकट परिस्थिति आये तो अस्तित्व उनके लिए प्रार्थना करता है; दिशाएं उनके लिए प्रार्थना करती है कि हे हरि! उसको कुछ भी नहीं होना चाहिए। हरि-सिमरन, हरि की स्मृति जिसकी बनी रहेगी, वो कर्म के मुकाबले में भय से मुक्त होगा।

तो तीन मुक्ति की चर्चा गांधी ने की। पहली मुक्ति भयमुक्ति। गांधीबापू कहते हैं, राम का स्मरण करने से भयमुक्ति हुई; और होती है। हरि सिमरन से भय काहे का? हरिनाम का निरंतर संग करने से गांधी कहते हैं, मुझे भय से मुक्ति मिली; दूसरी मुझे विकारों से मुक्ति मिली। आदमी कमज़ोर है, इन्द्रियां प्रबल है। इन्द्रियां इतनी बलवान है कि कब समझदार आदमी को भी आकर्षित कर दे! इसलिए आदमी को हरिस्मरण रखना। विकारों से मुक्ति रामनाम देता है। और गांधीबापू कहते हैं, रामनाम रोग निवारक है। और अब मझे कुछ एड करके कहना है। तो गांधीबापू के शब्द, रामनाम रोगों से मुक्ति देता है; रामनाम विकारों से मुक्ति देता है; रामनाम भय से मुक्ति देता है। लेकिन कृष्णनाम? तत्त्व तो एक है; लेकिन कृष्णनाम आंख में आंसू जो बंधन में है इस आंसूओं को मुक्ति देता है। आदमी रो पड़ता है कृष्णनाम लेने से। कोई भी नाम लो, सब एक है।

दुनिया के मैदान में सुग्रीव आया राम के साथ और रामजी ने कहा, सुग्रीव, वालि को ललकार! और जैसे सुग्रीव ने वालि को आवाज़ दी कि वालि मैदान में आया! हाथ में गदा लेकर जैसे वालि खड़ा हुआ उसी समय उसकी धर्मपत्नी तारा ने चरण पकड़ लिए, किसी ने भी आपको ललकारा, कभी आप बैठे नहीं रहे और मैने कभी आपका मार्ग नहीं रोका। लेकिन आज मैं प्रार्थना करती हूं, मेरे सौभाग्य का सवाल है। आज आप सुग्रीव के साथ लड़ने ना जाओ। भले कर्म प्रबल है लेकिन सुग्रीव आश्रित है और आश्रित को कर्म कुछ नहीं कर सकता। ये ब्रह्म का आश्रित है, हरि का आश्रित है इसलिए आप प्लीज़, ना जाओ। प्रार्थना करने लगी, हे पतिदेव, सुग्रीव आज जिसको मिलकर आया है ये तेज और बल की सीमा है। प्राकृत परिचय दे दूं पतिदेव, ये राजा दशरथजी के पुत्र है। नाम बता दूं, लक्ष्मण-राम। और उसका प्रभाव बता दूं, काल को भी संग्राम में जीत सके ऐसे है वो। मेहरबानी करके आज आप मैदान में ना जाए। तब वालि कहता है, तू राम-लक्ष्मण की बात करती है, कौशलेश दशरथ के पुत्र, काल को जीतनेवाले; हे डरपोक स्त्री! घबराती क्यों है? मैंने देखे नहीं, उसकी बात सुनी है कि वो समदर्शी है। वो मुझे क्यों मारे? उसको सुग्रीव और वालि में भेद नहीं हो सकता। वो तो समदर्शी है। फिर भी मुझे मार दे तो मैं सनाथ हो जाऊं; मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा।

हाथ में गदा लेकर आया मैदान में। दोनों का द्वंद्वयुद्ध शुरू होता है। बड़ा द्वंद्वयुद्ध हुआ। राम वृक्ष के पीछे छीपकर देखते हैं। क्या मतलब? जीव जब कर्म से लड़ता है तब हम ईश्वर को नहीं देखते, ईश्वर हमें देखता है कि कौन कैसे लड़ रहा है? बहुत लड़ाई हुई। और वालि के साथ बेचारा सुग्रीव कहां टिक पाता? ऐसी एक मुष्टिका का प्रहार किया और सुग्रीव भागा! भगवान थोड़ी कसौटी तो करता है कि बच्चा कितना टिकता है जरा देखे तो सही!

प्रभु ने कहा, मैंने तो कबका सरसन्धान करके रखा था लेकिन 'एकरूप तुम्ह भ्राता दोउ।' पूरी दुनिया की शक्ल बनानेवाला इतना नहीं समझता कि दोनों भाई में सुग्रीव कौन? भगवान कहते हैं, सुग्रीव कौन, वालि कौन, पता नहीं लगता! मैं वालि को मारने जाऊं और तुझे तीर लग जाए तो दुनिया कहे, मित्रद्रोह कर दिया! तो मैं असमंजसता में था, तुम एकरूप हो, ज्यादा फ़र्क नहीं है। इतना वज्र समान प्रहार वालि का लगा था और भगवान ने सुग्रीव के शरीर पर हाथ घुमाया तो सुग्रीव की पीड़ा चली

गई; शरीर मानो वज्रांग हो गया; फिर बल आ गया। भगवान ने अपने कंठ में एक माला थी वो माला सुग्रीव के कंठ में पहना दी। इसका मतलब वालि को संकेत किया कि सुग्रीव के गले में जयमाला आ गई; विजय हो चुका है। अब तू समझ जा तो मुझे मारना नहीं। ईश्वर चांस देता है; ये मेरा आश्रित है और सुग्रीव को कहा कि अब मैं पहचान पाऊंगा कि मालावाला सुग्रीव और माला के बिना ये वालि।

मेरे युवान भाई-बहन, जीवन में संघर्ष तो करना पड़ेगा; कर्म के साथ लड़ना पड़ेगा, लेकिन हिंमत तब रहेगी कि मुड़-मुड़ के हरि का स्मरण करते रहो कि मेरा हरि मेरे पीछे है; कोई मेरे पीछे है। स्मृति बनी रहे तो संघर्ष में हम पार उतरेंगे। फिर बड़ा युद्ध हुआ। अब सुग्रीव हार गया हृदय से, बस इस बार मैं गया! उसी समय भगवान ने धनुष पर तीर चढ़ाया। जोर से बाण मारा। वालि धरती पर गिरा। भगवान दौड़कर आ गए। लेटे-लेटे वालि ने उपर देखा, राघव, मैं तुम्हारा वैरी और सुग्रीव आपका भगत, किस कारण से मुझे मारा गया है? मैंने आपका क्या बिगाड़ा? धर्म के लिए आप अवतरित हुए हो और मुझे क्यों मारा? मुझे न्याय दो। धर्म की दुहाई रखी तब प्रभु ने वालि को कहा, पुत्रवधू अपनी बेटी के समान, बहन अपनी बेटी के समान और छोटे भाई की पत्नी भी अपनी बेटी के समान मानी जाती है। उसको कोई कुदृष्टि से देखता है तो उसको मारने में कोई पाप नहीं। वालि कहता है, मुझे माफ़ करिएगा प्रभु, मैं होशियारी करने गया लेकिन आपके पास मेरी चातुरी नहीं चली! आप मुझे कहते हैं कि तू पापी है, मूढ़ है, अभिमानी है, आदि-आदि। प्रभु, माना मैं पापी हूं, लेकिन ये पाप मेरे लिए कितना फलदायक हो गया! अन्तकाल आप मेरे सन्मुख राजीव लोचन खडे हैं, मैं कितना भागयशाली हूं!

वालि को समझ आई तो परमात्मा ने कह दिया, तुझे अचल कर दूं, अमर कर दूं। तब वालि ने कहा, महाराज, मैं ऐसा मूढ़ नहीं कि कल्पवृक्ष की शाखा को काटकर बबूल की वाड़ करूं! मुझे इतनी समझ है कि मेरा ये मौका है निर्वाण का। आप कहो और मैं मरने को तैयार हूं; मैं जीने के लिए राज़ी नहीं। आज मेरे प्रत्यक्ष आप हो और आज मैं देह रखूं? प्रभु, मैं अब शरीर रखना नहीं चाहता। वालि की समझ देखने के बाद प्रभु विशेष प्रसन्न हुए हैं। भगवान कहते हैं, वालि, कुछ कहना चाहते हो? बोले, हां, कहना भी चाहता हूं और कुछ करना भी चाहता हूं। क्या? वालि-निर्वाण का समय है। उसी समय वालिपुत्र अंगद वहां खड़ा है और वालि ने अपने दायें हाथ से अंगद का हाथ पकड़ा और कहा कि राघव, ये मेरा बेटा है, बलवान है, विनयवान है; महाराज, मैं चाहता हूं, मेरे बेटे का हाथ आप कुबूल करो।

मैं पहले कहता रहता कि दुनिया में कन्यादान करनेवाले बाप तो घर-घर है, लेकिन किसी ने कुमार दान किया हो ये 'रामायण' का एक ऐसा पिता है, जो कुमार का दान करता है। कन्यादान तो करते ही है, करना चाहिए। जैसे बाप कन्या का हाथ लेकर जिसका वरण हुआ है उस पुरुष के हाथ में देता है। आज वालि ने कुमार-दान किया है। सच्चा वालि कौन? जो अपनी संतान को सत्य के हाथ में समर्पित करे। सच्चा वालि वो है जो अपनी संतान को प्रेम के हाथ में समर्पित करे; करुणा के हाथ में समर्पित करे। भगवान ने दिल में बाण मारा था। और हृदय में प्रेम रहता है। आज वो प्रेम प्रकट हुआ है। दिल में दबा हुआ प्रेम या तो परमात्मा के बाण से प्रकट होता है या किसी बुद्धपुरुष की वाणी से प्रकट होता है। तो हृदय से कहता है, महाराज, अब एक ही इच्छा है, करुणा करके मेरे सामने देखो। एक वरदान मांगूं, जो-जो योनि में मैं मेरे कर्मो के परिणाम स्वरूप जनम लूं, मुझे जनम-जनम परमतत्त्व के चरणों में प्रेम रहे; यही आप मुझे दीजिए। राम के चरण में प्रीति दृढ़ करके वालि ने अपना शरीर छोड़ा और ऐसे चेतना निकल गई।

वह पितृचरण है जो अपने पुत्र को परम के हाथ में समर्पित करता है। वालि कह सकता था कि प्रभु, आपने मुझे भले मारा लेकिन राज्य का उत्तराधिकारी मेरा बेटा होगा। मैं राजा और ये मेरा पुत्र युवराज हो। अब मैं मरूं उसके बाद राजा वो बनेगा। लेकिन वालि ऐसा था, पितृचरण ऐसा था कि उसने अपने बेटे को सत्ता के हाथ में नहीं दिया, सत् के हाथ में समर्पित किया।

वह पितृचरण है जो अपने पुत्र को परम के हाथ में समर्पित करता है। वालि कह सकता था कि प्रभु, आपने मुझे भले मारा लेकिन राज्य का उत्तराधिकारी मेरा बेटा होगा। मैं राजा और ये मेरा पुत्र युवराज हो। अब मैं मरूं उसके बाद राजा वो बनेगा। लेकिन वालि ऐसा था, पितृचरण ऐसा था कि उसने अपने बेटे को सत्ता के हाथ में नहीं दिया, सत् के हाथ में समर्पित किया। यही है पितृचरण। उसी अर्थ में वालि को इस कथा में देखने की चेष्टा कर रहे थे।

'मानस-पितृदेवो भव।' उसकी जो हम चर्चा कर रहे थे, उसको यहां रखते हुए थोड़े आगे मैं चलूं। कल तो विराम करना है। कल पितृचरण में केवल रावण का दर्शन करना है और फिर इस नव दिवसीय कथा का समापन। कल 'बालकांड' समाप्त किया था। 'अयोध्याकांड' में सुख की वर्षा हो रही थी और गोस्वामीजी यह संदेश देना चाहते हैं कि सुख अच्छी चीज़ है लेकिन अतिवृष्टि बहुत नुकसानकारक भी है। अतिशय सुख का परिणाम आया रामवनवास। महाराज दशरथजी वचनबद्ध थे। और मंथरा के कुसंग के कारण भरत जैसे संत की माँ उसकी बुद्धि को घुमा दी गई। परिणाम ये हुआ, रामराज्य के बदले रामवनवास की नौबत आ गई। राम, लक्ष्मण, जानकी पूरी अवध को अनाथ करके वन-यात्रा को निकल जाते हैं। तमसा पर निवास किया; वहां रात्रि में लोग रो-रो कर सो गए। भगवान वहीं से उसको छोड़कर निकल जाते हैं। शृंगबेरपुर पहुंचते हैं। प्रभु एक रात्रि मुकाम वहीं करते हैं। राम, लखन, जानकी सुरसरी तट पर आ गए। केवट ने भगवान के चरण धोए; प्रभु को गंगा पार किया। भगवान संकोच में पड़ गये कि मैं इस केवट को क्यां दूं? भगवान उदासीन व्रत में है। कुछ नहीं है आज उसके पास। पति के मन की बात जाननेवाली जानकी ने अपनी उंगली में जो मणि मुद्रिका थी वो निकाल कर दे दी कि प्रभु, केवट को उतराई मे मणि मुद्रिका दे दो। भगवान मुद्रिका लेकर केवट को मुद्रिका दे रहे हैं। केवट ने कहा महाराज, मैं कोई उतराई लेनेवाला नहीं हूं। आपको देना ही है प्रभु, तो चौदह साल के बाद जब आप लौटो तब देकर जाना। पक्का कर लिया कि जाओ तब यहीं से ही गुजरना!

प्रभु गंगा के तट पर एक रात्रि रहे। अब भगवान की पदयात्रा शुरू होती है। भगवान चलते हुए भरद्वाज ऋषि के आश्रम में प्रयाग में आये हैं। भगवान की यात्रा आगे बढ़ती है। वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में आये। वाल्मीकि ने चौदह आध्यात्मिक स्थान दिखाए और फिर कहा, आप चित्रकूट जाइए। राम, लखन, जानकी चित्रकूट आते हैं। यहां सुमंत लौट रहा है। आज रामविरह में महिपति भी धैर्य गंवाते जा रहे हैं। थोड़ा धैर्य रखा और सुमंत ने सब कथा सुनाई। समय बीतता चला और महाराज की चेतना धीर-धीरे विराम की ओर जा रही थी। आखिर में छः बार राम का नाम दशरथजी ने लिया है; छठी बार 'राम' शब्द के साथ दशरथजी की चेतना निकल गई। भरत को खबर पहुंचाई। भरत आए। भरत की मन:स्थिति का कैसे वर्णन किया जाए? वशिष्ठजी ने शोक निवारण करते हुए सबको सम्भाला। महाराज दशरथजी का अंतिम संस्कार हुआ। दिन बीतने लगे। एक सभा मिली। राजा कौन हुए उसकी राजनैतिक चर्चा हुई। आखिर में भरत का प्रस्ताव कुबूल कर दिया गया कि मैं पद का आदमी नहीं हूं, मैं पादुका का आदमी हूं; मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं सत् का आदमी हूं। मेरा हित चाहते हो तो एक बार हम सब चित्रकूट जाए; उसकी शरण में एक बार जाकर मैं मांग लू फिर आप जो कहोगे सो करूंगा।

पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट जाते हैं। यहां जनकजी भी जनकपुर को लेकर आते हैं। दो नगरी प्रेमनगरी में परिवर्तित हो गई। चित्रकूट में बड़ी-बड़ी चर्चाएं हुई। आखिर में निर्णय हुआ कि राम जो चाहे उसी में हम राजी हो जाए। समर्पण की स्पर्धा है रामकथा, जहां समर्पण के सिवा ओर कोई स्पर्धा नहीं। आखिर में भरत जो एक क्षण भी राम के बिना न रह सके उसने कहा-

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।

हे मेरे प्रभु, हम तो तुम्हारे प्रेमी है। तुम्हारा मन जिसमें प्रसन्न हो वो ही करो। प्रभु को लगा, भरत को मैं कोई आधार दूं। पादुका अर्पण की है। पूरा समाज लौट गया। अयोध्या आए। पादुका सिंहासन पर स्थापित की। कुछ दिन राज व्यवस्था करके जनकजी मिथिला चले गए। फिर भरतजी ने गुरुआज्ञा ली। माँ की आज्ञा लेकर अवधनगर के बाहर नंदीग्राम में एक कुटिया बनाई और भरत तपस्वी जीवन जीने लगे। 'अयोध्याकांड' को पूरा किया तुलसी ने।

रावण में दस बातें ऐसी है, जिसमें पांच श्रेष्ठ है, पांच कमज़ोर है

'मानस-पितृदेवो भव।' पितृपक्ष में इस विषय को, इस विचार को केन्द्र में रखते हुए क्रिया से नहीं, हम विचार से पितृतर्पण कर रहे हैं; वृत्ति से पितृतर्पण कर रहे हैं। आज आखिरी दिन इस कथा का। भगवान राम के इस बोल को याद करें; भगवान ने कहा, पूरा संसार मेरा संतान है। जैसे एक पिता के कई पुत्र होते हैं पृथक्-पृथक् गुणवालें। ऐसे पूरी सृष्टि में सब मेरे पुत्र है। सबके बिलग-बिलग शील-स्वभाव है। फिर भी जो मन-वचन-कर्म से पितृभक्त है, जिसको पितृभक्त के सिवा कोई दूसरा धर्म नहीं है। जैसे महाराष्ट्र का पुंडलिक। इतनी पितृभक्ति थी पुंडलिक में। यह पितृभक्ति देखकर स्वयं विठ्ठोबाजी भगवान पधारे। वो अनन्यता लेकर पितृचरण में मन, वचन, कर्म से पिता की सेवा कर रहा था। कथा कहती है कि भगवान खड़े थे। एक-दो बार भगवान ने पुकारा भी, मैं खड़ा हूं, मैं तेरी पितृभक्ति देखकर तेरे द्वार आया हूं; मेरी ओर तो देख! पुंडलिक ने देखा नहीं। वो पिता की भक्ति में लगे रहे। दूसरी बार कहा; तीसरी बार कहा। भगवान द्वार पर खड़े-खड़े श्रमित हो गये। खड़े रहने की ठीक जगह नहीं है। पुंडलिक ने इंटा फेंका और कहा, समतल जगह न हो तो इंटा पर खड़े रहो। जब तक पितृचरण की सेवा न हो जाय, तब तक मैं आपकी शरण में नहीं आऊंगा। भगवान इंटा पर खड़े हैं और इतने थक गये कि दोनों हाथ कमर पर प्रभु ने रख दिये। जब पितृसेवा पूरी हो गई तब वो भगवान के पास गया। भगवान ने कहा, मैं आया और तू मेरी ओर ध्यान भी नहीं देता है? बोले, प्रभु, आप आये हो इस पितृसेवा के कारण। जिस कारण से कार्य घटा है वो कार्य को मैं बंद नहीं कर सकता। जिस साधन से अध्यात्म की प्राप्ति हुई है उस साधन को मैं क्यों छोडूं?

ज्ञानमार्ग में साधन छूट जाते हैं अथवा तो ज्ञानी छोड़ भी देता है। जो ज्ञानमार्ग का साधक है वो साधन नहीं करता। वो जप, तप, पूजा, पाठ कुछ नहीं करता; दैवी स्वरूप का अनुसंधान करता रहता है। भक्तिमार्ग में परम स्वरूप का आत्मसात् होने के बाद भी साधक साधन का त्याग नहीं करता। कोई भी भजनानंदी पुरुष परमात्मा का पूर्णतः साक्षात्कार होन के बाद भी अपनी माला या बेरखा नहीं छोड़ेगा। साधन के द्वारा हरि की प्राप्ति हुई है। हां, साधन शुद्ध होना चाहिए। शुद्ध साधन से ही विशुद्ध साधन की प्राप्ति होती है। साधन ही गलत हो उसको विशुद्ध की प्राप्ति असंभव है।

तो अनेक पुत्र होते हैं। पूरा जगत उसके संतान है। 'गीता' में कृष्ण कहते हैं, पूरी सृष्टि का बीज मैं हूं। सृष्टि दान करनेवाला मैं हूं। दुनिया का बाप मैं हूं। मैं ही यह बीज दान करता हूं। यह बीजदाता पिता है। माता बीजदाता नहीं मानी गई है। माता क्षेत्र है। जैसे किसान बीजदाता है, पृथ्वी माता है। पृथ्वी बीज को अंकुरित करती है, बड़ा करती है, सब तरह से बल देती है। तो पिता की महिमा बहुत है बाप! ठीक है, संसार है, परिस्थिति है, काल का प्रभाव है इसलिए वृद्धाश्रम ज़रूरी हो गये। लेकिन पितृभक्ति के सामने वृद्धाश्रम जरा शोभा नहीं देता। लेकिन 'मानस' में लिखा है, कलि प्रभाव है। करे भी क्या? कागभुशुंडि कलियुग का वर्णन करते हुए 'उत्तरकांड' में बोले हैं-

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं।
अबलानन दीख नहीं जब लौं।।

कलियुग का वर्णन करते हुए तुलसी ने कह दिया कि कलियुग में बेटा अपने माता-पिता को तब तक मानेगा जब तक अपनी अबला का चेहरा नहीं देखा; शादी नहीं हुई। हर एक घटना में ऐसा नहीं होता लेकिन बहुधा ऐसा होता है। माता-पिता को तब तक मानता है तब तक अपनी पत्नी का चेहरा नहीं देखा। हम संसार में देखते भी हैं कि संतान अपनी पत्नी में आसक्त हो गया वो माँ-बाप को कहने लगा, आप क्या जाने? आप पुराने हो गये! आप ओल्ड माइन्ड है! यह शब्द यूझ करते हैं पढ़े-लिखे लोग! मैं तो सलाह दूं इन पुत्रवधूओं को कि माँ-बाप को भूल जाए तो पुत्रवधू को अपने पति को गाइड करना चाहिए। आप मेरे पति है, आप मेरा सबकुछ है लेकिन मैं बाद में आई हूं, आप भी बाद में आये हैं, पहले तो यह बाप था।

शास्त्रों में स्त्री के लिए, पत्नी के लिए एक शब्द है 'कान्ता।' बड़ा प्यारा शब्द है। 'कान्त' का अर्थ होता है पति, 'कान्ता' का अर्थ होता है पत्नी। श्रेष्ठ स्त्री के लिए उपयोग में लिया गया यह शब्द है, 'कान्ता प्रिया भाषिणी।' कान्ता के कुछ लक्षण है; उसमें वर्णन आया है कि कान्ता वो है कि मार्गभूले पति को सही मार्ग पर ले आए। कान्ता उसका नाम है, मार्गभूले पति को सुमार्ग पर ले आये। पीछे चलना यह निष्कृटता नहीं है; जो पीछे चले वो हीनता नहीं है; वो अवमूल्यन नहीं है। श्री हनुमानजी पूरी वनयात्रा में पीछे ही चलतें हैं; जानकीजी पूरी यात्रा में पीछे ही चलती हैं; लक्ष्मण पूरी यात्रा में पीछे ही चलतें हैं। किसी के पीछे चलना अपनी आत्मा का खंडन नहीं है। जो पीछे चलते हैं वो आगे चलनेवाले से महान होते हैं। आगे चलनेवाला है वो जरा ढीला हो जाए तो पीछे से उसको पुश किया जाए कि तुम्हारा धर्ममार्ग यह है। और हमारी सभ्यता में जब भी पुरुष ढीला हुआ है तब मातृशरीर ने ही उसको मार्गदर्शन दिया है। ऐसी स्त्री को कहते हैं कान्ता। पुरुष कमाई करे लेकिन पत्नी कान्ता हो तो ही कमाई उसके हाथ में दे, जो व्यवस्था करें। आजकल प्रेक्टिकल होना चाहिए। माताएं कमाए, ज़रूर कमाए। लेकिन एक समय था जहां अर्थोपार्जन केवल पुरुष को करना था। स्त्री को उसका अनुगमन करना था। जिस घर में पत्नी उसके पति से ज्यादा अर्थ कमाई करें उस घर में पति की जो दशा होती हैं, परमात्मा बचाए! भारत के ऋषिमुनियों ने जो स्थितिस्थापक नियम दिये हैं, जड़ नहीं। इसमें सुधार का अवकाश हैं; करना चाहिए।

तो बाप! कान्ता नारी का एक अद्भुत स्वरूप हैं। पुरुष कमाए। स्त्री अतिथि की व्यवस्था, बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था, घर में सब सुधार यह सब स्त्री करें, पुरुष नहीं। यह एक रीत ऐसी थी कि कमाई हुई संपदा स्त्री के हाथ में दें। क्योंकि स्त्री लक्ष्मी है। लक्ष्मी ही लक्ष्मी को संभाल पाएगी।

कोई तिजोरी, कोई बेन्क का लोकर इतना सलामत नहीं जितना पैसा बहनों के पास सलामत है। यह नोटबंधी के बाद जितनी नोटें बहनों के पास से निकली इतनी पुरुषों के पास नहीं निकली! लक्ष्मी ही लक्ष्मी को संभाल पाती है। सोचो, स्त्री ही अर्थव्यवस्था है। पुरुष अर्थ उपार्जन करें, स्त्री अर्थ की योजना करें। स्त्री बड़ी अर्थशास्त्री है। पुरुष तो प्रचारक है। हमारी पुरानी परंपरा कहती है कि जब पुरुष को पैसे चाहिए तो स्त्री से मांगे कि मुझे यह लेना है। देखो, संसार कितना प्यारा रहेगा? मेरे कहने का मतलब भारतीय परंपरा में नारी को पुरुष के पीछे चलने की एक जो परंपरा बनी वो निकृष्ट है इसलिए नहीं, इसलिए कि हारे हुए पति को पुश करना है।

तो 'मानस-पितृदेवो भव' उसकी हम चर्चा कर रहे हैं। नव पितृओं की वंदना इस कथा में मैंने निर्धारित की थी। बाकी बीस पितृ-चरण का स्मरण 'मानस' में है। आठ पितृओं की स्मृति हमने कर ली जिसमें कल वालि की स्मृति रही। आज आखिरी पितृवंदना है और वो रावण की वंदना। रावण भी किसी का पितृ तो है ही। और जब 'रामचरितमानस' अपना अभिप्राय देता है तो कहता है, रावण में कोई खराबी नहीं है। मैं कहूं तो आपको लगे कि बापू का निवेदन जरा हटके है। हां, कुछ कमियां ज़रूर है। लेकिन रावण का पूर्व इतिहास देखो तो कभी वो शंकर का गण है। शंकर के गण पापी नहीं हो सकते। थोड़ी कमजोरी है। नारद को कहा, दर्पण में देखो। मज़ाक की ये थोड़ी कमजोरी है। रावण के एक अवतार में पूर्वचरित्र जय-विजय है। वैकुंठ के द्वारपाल ऐसे-तैसे नहीं हो सकते। उसकी महिमा को अनदेखा न किया जाए। वृंदावाले प्रसंग में जाए तो रावण एक बहुत बड़ा बलवान, जलंधर के रूप में समाज में आया। जिसकी पत्नी बहुत बड़ी पतिव्रता रही वृंदा। रावण अपने पूर्वजन्म में सत्यकेतु नामक बाप का एक अच्छा बेटा है। सत्य की धजा फरकानेवाला जिसका बाप है उसका बेटा ये था, जो दूसरे जनम में रावण हुआ। बाकी उसका पूर्वजीवन प्रतापभानु है। सूर्य के समान ये आदमी प्रतापी है।

मैंने तो दशानन पर दस कथाएं की है, 'मानस-रावण।' मैं फिर तुकारामजी के शब्द याद करूं तो तुकाराम कहते हैं, विष्णुदास वो है जिसको पूरी पृथ्वी पवित्र लगती है। यदि तुम विष्णुदास हो तो तुम्हें कुछ अपवित्र लगना ही नहीं चाहिए। रावण भी कुछ है। पूर्व जीवन अच्छा है उसका। तो फिर ऐसा राक्षस क्यों हुआ? तब उसका बचाव किया गया 'रामचरितमानस' में। उसके पूर्वजों की शृंखला बताई, जिसमें कोई खराब नहीं है। पूरी पितृपरंपरा रावण की निष्कलंक है, विमल है, निर्मल है।

तो इस रावण को कैसे जस्टिफाय करें? मैं उसको पितृवंदना में ले रहा हूं। मेघनाद तो पहले मर गया। अक्षयकुमार पहले मर गया। सब मर गये। रावण का किसी ने श्राद्ध किया हो कि नहीं, मुझे खबर नहीं लेकिन मोरारि बापू कर रहा है। किसने किया होगा? नहीं किया होगा। विभीषण ने किया हो तो अच्छा है। और मंदोदरी कर सकती है। बहन भी श्राद्ध कर सकती है। श्राद्ध विधि में बहनें बैठ सकती है। मेरी ओर से छूट है। लेकिन मंदोदरी ने भी नहीं किया क्योंकि मंदोदरी ने सोचा कि जो निर्वाणपद प्राप्त कर गया उसका श्राद्ध नहीं होना चाहिए। जो परमात्मा के धाम में चला गया फिर उसके श्राद्ध करने की क्या ज़रूरत? मंदोदरी ने नहीं किया। विभीषण ने किया हो ऐसा कोई मेरी दृष्टि में उल्लेख पढ़ा नहीं, सुना नहीं। जिनका कोई नहीं उनका मोरारि बापू! कौन करेगा श्राद्ध? तो मेरी दृष्टि में ये रावण की भी पितृवंदना है; उसका ये तर्पण है। मूल में ये आदमी अच्छा है; बुरा नहीं है। दुनिया की नज़रों में है। दूसरे पितृओं के साथ रावण की तुलना न हो सके। मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तो केवल आप के सामने जो तुलसी का शब्दब्रह्म है उसका थोड़ा अनावरण कर रहा हूं।

उपजे जदपि पुलत्स्यकुल पावन अमलअनूप।

उसके कुल, उसकी पितृपरंपरा के लिए तीन शब्द; एक तो पवित्र परंपरा, पावन, अमल, निर्मल और अनूप। तो फिर ये राक्षस क्यों हुआ? बोले, उसका कोई दोष नहीं।

तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप।।

ब्राह्मणों ने श्राप दिया इसलिए ऐसा हुआ। तो कौन दोषी है? नियति थी। परमात्मा का ये सब खेल था। इसलिए

ब्राह्मणों ने श्राप दिया। बहुत तटस्थ न्याय से देखो तो आदमी अच्छा था। लेकिन ब्राह्मणों ने श्राप दिया। इसलिए अघरूप हो गया। अहल्या के बारे में क्या सोचते हो? थोड़ी कमजोरी रही होगी, चलो। अहल्या की थोड़ी चूक ज़रूर होगी। लेकिन तुलसी उसको बाईज़्ज़त बरी करते हैं। विश्वामित्र कहते हैं, 'गौतम नारी श्राप बस।' गौतम के श्राप के कारण इसकी ये हालत; मूल में ये गलत नहीं है। ऐसा बचाव है। और ब्राह्मणों के श्राप के कारण ये रावण राक्षस हुआ है। तो न्याय करना चाहिए। रावण तो खुश है। खूब मारो! उन्हें ब्राह्मणों ने पीटा है। उन्हें गैरसमझों ने पीटा है। इस का मतलब ये नहीं कि मैं रावण को आदर्श के रूप में स्थापित कर रहा हूं। ध्यान देना, युवान भाई-बहन, गलत संदेश मत लेना। मुझे ठीक से सुनना। बोलूं उसकी जिम्मेवारी मेरी है; सुनकर क्या अर्थ करते हैं उसकी जिम्मेवारी तुम्हारी है।

रावण में दस बातें ऐसी है जो तलगाजरडी आंखें देखती है। इसमें पांच श्रेष्ठ हैं। पांच कमज़ोर हैं। ये दस सिरवाला आदमी है। उनमें दस वस्तु आप देखोगे। तो पितृरावण जो है उनमें पांच वस्तु अच्छी है। इमानदारी से सोचो तो ये पांच वस्तु तो माननी पड़ेगी। मैं दबाव नहीं ड़ाल रहा हूं। लेकिन समचित्त से यदि आप निर्णय करो तो रावण बलवान है। अच्छा लक्षण हैं उसमें। उसने 'हनुमानचालीसा' का पाठ किया कि नहीं, मुझे खबर नहीं, लेकिन उसको ये खबर है कि मेरा गुरु हनुमान है। और हनुमान जैसा गुरु जिसको होता है उसमें तीन वस्तु आ ही जाती है बल, बुद्धि, विद्या। रावण बलवान है। रावण बलवान है। रावण बलवान है। दूसरा, रावण बुद्धिमान है। रावण बुद्धिमान है। रावण बुद्धिमान है। रावण विद्यावान है। गजब की विद्या का आदमी है साहब! युद्ध के मैदान में जो विद्याओं का उपयोग करता है! रावण विद्यावान है।

रावण विद्यावान है। रावण विद्यावान है। चौथा लक्षण रावण का, रावण तपवान है।

एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा।
मैं ब्रह्माँ मिलि तेहि बर दीन्हा।।

शंकर कहते हैं। मैं मानी शंकर। मैं और ब्रह्मा दोनों ने मिलकर बर दिया हैं। रावण तपवान हैं। भुजबल तो देखो उसका कि शंकर सहित जो आदमी कैलास को उठा ले! उससे बलवान कौन हो सकता है बद्धि में? गजब का बुद्धिमान है। उसकी राजनीति में उपयोग में आई बुद्धि दुनिया की राजनीति का एक संबल बन सकती है। बड़ा बुद्धिमान है। और बड़ा विद्यावान। बड़ा तपवान। और पांचवां मेरी व्यासपीठ की दृष्टि में रावण है धनवान। जिसके किल्ले सोने के थे। उनके धन की कौन गणना कर सके? रावण सुवर्णप्रेमी है। उसकी मानसिकता 'मानस' से पकड़ो। ये आदमी स्वर्णासक्त है; स्वर्ण प्रेमी है; स्वर्ण में डूबा है। इसलिए मारीच को जब सीता के अपहरण की योजना कहता है तब मारीच सोने का ही बने ये बात उसके दिल में आई। ये मानसिकता है। कनकमृग बनाया। सोने के प्रति आकर्षण है। लंका सोने की। और जो जानकी को अपहरण करके ले गया वो जानकी भी कनकपंकज की कली, सोने की कली है। और रावण को समझाने गया उसका पहला वो गुरु हनुमानजी कनक देह है।

तो रावण धनवान है। ये बलवान है। ये बद्धिमान है। ये विद्यावान है और ये तपवान है। पांच वस्तु बड़ी सबल है रावण के जीवन की। लेकिन उसके सामने पांच थोड़ी कमजोरी है। रावण नीतिवान नहीं है और रावण धर्मवान नहीं है। तीसरा, रावण शीलवान नहीं है। ये कहता है, मैं नीति-धर्म जानता हूं। लेकिन जानता नहीं है। अंगद ने उपहास किया, 'धर्मशील तो तव जग जानी।' तुम्हारी धर्मशीलता तो रावण, पूरे जगत में विख्यात है। परनारी का तू अपहरण करता है, ये तेरी धर्मशीलता है? तो रावण शीलवान नहीं है। शीलवान वो है जो बार-बार रूप न बदले। अपने निजरूप में जीवन जगत के सामने रखे वो शीलवान है। और ऐसे शीलवान की वंदना करने तो मेरा समढियाळा बोला है-

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई...

रावण धर्मशील नहीं है। मेरी दृष्टि में शीलवान की एक ही व्याख्या, घड़ी-घड़ी रूप बदले ये शीलवान नहीं, निजता में रहे। शीलवान वो है, देखे सबको लेकिन आंखों में वासना न हो, उपासना हो।

तो शीलवान का एक लक्षण है, जो रूप न बदले। रावण रूप बदलता है। रावण धर्मशील भी नहीं हैं। तत्त्वतः वो धर्मवान नहीं है। नीतिवान नहीं है; यद्यपि कहता है, नीति-धर्म मैं जानता हूं। और न वो शीलवान है। रावण का चौथा कमजोरीवाला पक्ष, रावण भक्तिवान नहीं है। इसलिए तो कहता है-

होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

रावण स्वयं कुबूल कर रहा है कि मुझ से भजन नहीं होगा; मैं भक्ति नहीं कर पाउंगा। तो अपहरण करके ले आऊं तो शायद करूं। अपहरण की गई भक्ति भक्ति नहीं होती; भक्ति छाया होती है। समर्पण करके जो लाया जाए वो भक्ति होती है। रावण ले आया लेकिन भक्ति नहीं, भक्ति छाया। समर्पण से जो भक्ति आए वो नगद भक्ति आती है। तो रावण धर्मवान नहीं है; नीतिवान नहीं है; शीलवान नहीं है; भक्तिवान नहीं है। पांचवां कमजोर पक्ष रावण का तलगाजरडी दृष्टि में वो है, रावण रूपवान नहीं है। रावण में रूप नहीं है; शोभा नहीं है रावण की।

ये पांच अभाव और पांच उसका बलवत्तर पक्ष ऐसा एक पितृ है दशानन, जिसकी वंदना हम इस कथा में नववें स्थान पर कर रहे हैं। तो रावण भी एक महत्त्व का पात्र है। मूलतः उसका कुल, उसकी पितृपरंपरा अनूप है, कहीं जोड़ी न मिले ऐसी। फिर भी श्राप के कारण एक बाध्यता पैदा हो गई इसलिए वो पापरूप, कामरूप, हिंसक हो गया; कामरूप हो गया, प्रपंची बन गया। फिर भी रावण की मूलभूत बातें है उसको तो सोचना ही पड़ेगा। तो ऐसा एक पितृ मेरी समझ में रावण भी है।

आज आखिरी दिन, विराम का दिन है तब कथा के प्रसंगों का जरा उपर-उपर से दर्शन कर लें। कल संक्षेप

में 'अयोध्याकांड' को विराम दे दिया गया था। 'अरण्यकांड' में भगवान तेरह साल तक चित्रकूट में रहकर अब स्थानांतर करते हैं। प्रभु को लगा कि यहां मैं ज्यादा रहूंगा तो लोग मुझे जानने लगेंगे और मेरा अवतारकार्य ठीक से नहीं होगा। इसलिए प्रभु ने आगे जाने का निर्णय किया। और भगवान अत्रि-अनसूया के आश्रम में आये। महर्षि अत्रि ने प्रभु की पूजा की और स्तुति की। यहां जानकीजी ने अनसूया के चरण में वंदन किया और नारीधर्म की विशेष शिक्षा प्राप्त की। वहीं से प्रभु आगे बढ़े; शरभंग के आश्रम में गए। फिर सुतीक्ष्ण राम का परम भक्त है उसको प्रभु दर्शन देते हैं। सुतीक्ष्ण के साथ प्रभु कुंभज ऋषि के आश्रम में गए। असुरों के निर्वाण की योजना बनाई; गहरी विचारणा हुई; मंत्रणा हुई। यहां मंत्र लेकर प्रभु आगे बढ़े। रास्ते में जटायु से मैत्री हुई।

प्रभु पंचवटी में गोदावरी के तट पर स्थायी हुए। एक दिन लक्ष्मणजी ने रामजी से जिज्ञासा की। पंचवटी में पांच प्रश्न पूछे गए। भगवान ने पांचों प्रश्नों के उत्तर दिये। उसके बाद शूर्पणखा आती है। दंड़ित हुई। शूर्पणखा ने खर-दूषण को उकसाया। भगवान और उसकी लड़ाई हुई। चौदह हजार राक्षसों को प्रभु ने निर्वाण दिया है। सामूहिक निर्वाण की ये यात्रा थी। सामूहिक मुक्ति प्रदान की गई। शूर्पणखा गई रावण के पास। रावण मारीच को लेकर जानकी का अपहरण करता है। राम-लक्ष्मण जब लौटते हैं; सीताशून्य कुटिया देखकर प्रभु मानवलीला करते हैं; रोते हैं। आगे बढ़े। जानकी की खोज में गीधराज जटायु जिसको पिता का आदर दिया गया; पितृतुल्य उसका अग्निसंस्कार किया। फिर भगवान वहीं से आगे बढ़े। शबरी के आश्रम में आये। बीच में कबंध का निर्वाण किया। शबरी के सामने नौ प्रकार की भक्ति। ये शबरी प्रदेश माना जाता है। शबरी धाम ये डांग, आहवा, वलसाड का कुछ हिस्सा ये सब शबरी आदि का प्रदेश श्रद्धाजगत मानता है। शबरी के आश्रम में प्रभु आये। नवधा भक्ति की चर्चा हुई। शबरी भगवान के स्वरूप में योग अग्नि में विलीन होकर चली गई जहां से लौटना न पड़े। और यहां से प्रभु पंपा सरोवर गए। वहां नारद से मुलाकात हुई। संतों के लक्षण की चर्चा भगवान ने नारदजी को सुनाई।

'किष्किन्धाकांड' में हनुमानजी और राम का मिलन और हनुमान के द्वारा विषयी सुग्रीव का रामजी से मैत्री संबंध हो गया। वालि को निर्वाण। अंगद को युवराज पद। सुग्रीव को राजतिलक। प्रभु ने प्रवर्षण पर्वत पर चातुर्मास किया उदासीन व्रत के नियमानुसार। सुग्रीव जिसको सब कुछ मिल गया भोग, साधन तो प्रभु का कार्य भूल गया। वादा चुक गया। भगवान ने थोड़ा भय दिखाया। सुग्रीव शरण में आया। और जानकी की खोज का अभियान चला। सभी बंदरों को तीन दिशाओं में भेज दिया। दक्षिण में अंगद के नायकपद और जामवंत के मार्गदर्शन में एक टुकड़ी भेजी जिसमें हनुमानजी भी हैं। ये दक्षिण में सीता की खोज करने के लिए निकलते हैं। सब से पीछे हनुमानजी। प्रभु ने मुद्रिका दी। निकल पड़े। गहन जंगल में जरा भटक गए। फिर हनुमानजी आगे आये। स्वयंप्रभा के आश्रम में जलपान किया। वहीं से सब समंदर के तट पर आये जहां संपाति का मिलन हुआ। संपाति ने कहा, यहां बैठे-बैठे मैं देख रहा हूं कि सीता अशोकवाटिका में, लंका में शतजोजन दूर है। आप में से कोई लंका जाए तो जानकी को खोज पाएगा। अब जाए कौन लंका? सबने अपना मत दिया। आखिर में हनुमानजी चुप थे। जामवंत ने आह्वान किया कि हनुमानजी, आप चुप क्यों है? आपका अवतार ही तो रामकार्य के लिए है। हनुमानजी पर्वताकार हुए हैं। जामवंत से मार्गदर्शन किया और कार्य करने के लिए हनुमानजी प्रवृत्त हुए। 'किष्किन्धाकांड' पूरा। 'सुन्दरकांड' आरंभ-

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

श्री हनुमानजी अवरोधों को पार करते हुए लंका में प्रवेश करते हैं। रावण के मंदिरों में जानकी की खोज करने लगे। मंदिरों में कहीं सीता नहीं देखी। भोग देखे, भक्ति न देखी; कोलाहल देखा, शांति नहीं देखी; कायरता देखी; विकारों के कारण कमजोरियां देखी, शक्ति का दर्शन नहीं हुआ। फिर भी खोजते-खोजते एक भवन देखा जहां तुलसी का क्यारा है। रामनाम अंकित गृह है। प्रवेश करते हैं। विभीषण जागते हैं। दोनों वैष्णवों का मिलन होता है। विभीषण युक्ति बताते हैं सीता तक पहुंचने की। हनुमानजी जानकी तक पहुंचते हैं। उसी समय रावण आता है आदि-आदि।

हनुमानजी महाराज माँ को संदेश देते हैं। माँ प्रसन्न होकर हनुमानजी को आशीर्वाद देती है। फिर हनुमानजी ने कहा, मुझे भुख लगी है। मधुर-मधुर फल खाये। राक्षस आये। लंका में जा कर फरियाद कर रहे हैं। अक्षयकुमार आया। अक्षय का क्षय हुआ। मेघनाद हनुमानजी को बांधकर लंका के दरबार में हाज़िर करता है। रावण और हनुमंत का संवाद हुआ। आखिर में हनुमानजी की पूंछ जलाई गई और हनुमान ने पूरी लंका को जला दी। फिर हनुमानजी जानकी के पास आये। माँ ने चूडामणि दिया। माँ को ढाढस देकर हनुमानजी गर्जना करके वापस लौट गए। सुग्रीव के पास आये। हनुमंत कथा सुग्रीव ने सुनी। सब गए राम के पास। हनुमानजी को गले लगाया प्रभु ने। अब विलंब न करें। भगवान ने प्रस्थान किया है। समंदर के तट पर मुकाम हुआ।

यहां रावण द्वारा निष्कासित विभीषण प्रभु की शरण में आया। भगवान ने शरणागत को कुबूल किया। विभीषण की राय ली कि सतजोजन सागर है; लंका कैसे जाया जाए? विभीषण ने कहा, महाराज, तीन दिन आप अनशन करो। प्रभु तीन दिन व्रत करते हैं। समुद्र ने जवाब नहीं दिया। जड़ता प्रदर्शित की। धनुषबाण लिया तब समुद्र ब्राह्मण के रूप में मोतियों का थाल लेकर हरिशरण में आया। कहा कि महाराज, सेतु बनाओ। प्रभु ने सोचा, सेतु करना, जोड़ना एक दूसरे में सबको मिला देना यही तो मेरा अवतारकार्य है।

'लंकाकांड' में परम पुरुषार्थ का प्रतीक सेतुबंध बन गया। भगवान राम ने उसके मित्रों को कहा, ये परम उत्तम धरणी है। मेरी इच्छा है, यहां शिव की स्थापना करें और ऋषिमुनियों को बुलाए। रामेश्वर प्रभु का स्थापन हुआ। लंका पर विजय करना है उसको चाहिए पहले विश्वास की स्थापना करें। जो आदमी विश्वास की स्थापना नहीं कर सकता वो लंका पर मोहनगर पर विजय नहीं कर सकता। सब गए लंका में। सुबेल पर प्रभु का डेरा। यहां रावण मनोरंजन प्राप्त करने आया। प्रभु ने महारस भंग किया। सुबह में रावण राजदरबार में बैठा। संधि सफल नहीं हुई। युद्ध अनिवार्य हुआ। एक के बाद एक बड़ेबड़े वीर पुरुष वीरगति को प्राप्त कर गए। आखिर में इकतीस बाण लेकर प्रभु ने रावण के दस सिर, बीस भुजाएं, इकतीसवां नाभि केन्द्र के उपर बाण मारा और जीवन में पहली बार और अंतिम बार 'राम' बोलते हुए रावण गिरा। रावण का तेज प्रभु की मुखाकृति में समा गया। मंदोदरी आई। परमात्मा की स्तुति की। विभीषण को राजतिलक हुआ। जानकी को खबर दे दी गई और सीताजी को लाया गया। आखिर में पुष्पक विमान तैयार करके भगवान राम, लखन और जानकी और सखागण सब अयोध्या की यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं। हनुमानजी अयोध्या पहुंचे। प्रभु सेतुबंध का दर्शन करते हुए; ऋषिमुनिओं का दर्शन करते हुए शृंगबेरपुर गए।

'उत्तरकांड' में हनुमानजी महाराज भरतजी के सामने आ जाते हैं। परिचय देते हैं। भरतजी प्राण छोड़ने के कगार पर। उसी समय हनुमानजी ने डूबती नौका को बचा लिया। पूरी नगरी में वात फैल गई कि सकुशल प्रभु पधार

रावण में दस बातें ऐसी है, इसमें पांच श्रेष्ठ है; पांच कमज़ोर है। पितृरावण जो है उनमें पांच वस्तु अच्छी है। रावण बलवान है। दूसरा, रावण बुद्धिमान है। रावण विद्यावान है। चौथा लक्षण रावण का, रावण तपवान है। और पांचवां लक्षण मेरी व्यासपीठ की दृष्टि में, रावण धनवान है। लेकिन उसके सामने पांच थोड़ी कमजोरी है। रावण नीतिवान नहीं है और धर्मवान नहीं है। तीसरा, रावण शीलवान नहीं है। रावण भक्तिवान नहीं है। और पांचवां कमजोर पक्ष रावण का तलगाजरडी दृष्टि में, रावण रूपवान नहीं है।

रहे हैं। अयोध्या आनंद में डूब गई। और हनुमानजी ने आके प्रभु को कहा कि विलंब न करें। पुष्पक विमान सरजू के तट पर उतारा। गुरुदेव को प्रणाम किया। भरत और राम भेंटे। निर्णय नहीं हो पाया कि कौन वन में था? कौन भवन में था? परमात्मा ने अमित रूप लिया। प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा का ब्रह्म साक्षात्कार हुआ। यह ऐश्वर्य लीला है। उसके बाद प्रभु सबसे पहले कैकेई के भवन गए। माँ की पीड़ा थी उसको हर ली। कौशल्या, सुमित्रा को प्रणाम किया। सबकी आंखें डबडबा गई। और वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को पूछा कि आज ही राजतिलक कर दें? बोले, हां प्रभु। अब कल का भरोसा न करें। एक ममता की रात्रि बीच में आ गई तो रामराज्य चौदह साल पीछे चला गया। अब अभी ही राम का राजतिलक हो। स्नान किया। वस्त्रालंकार से सब सज्ज हुए। दिव्य सिंहासन आया। प्रभु को आदेश हुआ, आप विराजित हो। पृथ्वी को प्रणाम किया। सूर्य को प्रणाम किया। दिशाओं को और दिशाओं के देवताओं को प्रणाम किया। गुरु को प्रणाम किया। ब्राह्मण देवताओं को प्रणाम किया और भगवान राम विनम्रता से गादी पर बैठे। वामभाग में सियाजू बैठी और त्रिभुवन को रामराज्य प्रदान करते हुए भगवान वशिष्ठ ने राम के भाल में तिलक किया।

चार वेद प्रभु की स्तुति करने के लिए आये। धूर्जटी भगवान शंकर कैलास से अपने मूल रूप में राजदरबार में उपस्थित हुए और शिव ने स्तुति की। महादेव भक्ति सत्संग मांगकर चले गए कैलास। प्रभु ने मित्रों को निवास दिया। छः महीने बीत गए। सभी मित्रों को हनुमानजी के सिवा प्रभु ने अपना निजधर्म निभाने के लिए लौटा दिया। हनुमानजी पुण्यपुंज है इसलिए उसको लौटना नहीं पड़ा। परमात्मा की ये नरलीला है। समय मर्यादा पूरी हुई। जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। सीता का परित्याग सगर्भा स्थिति में, लोकापवाद आदि-आदि अपवाद की कथा तुलसी ने संवादी शास्त्र में दी नहीं हैं। जानकी के दो पुत्र लव-कुश जिसका ज़िक्र शास्त्र-पुराणों में रहा।

यहां रघुवर के वारिस के नाम बताकर रामकथा को विराम दे दिया। उसके बाद बाबा कागभुशुंडि का चरित्र है। गरुड का संदेह। सप्तप्रश्न पूछे। बाबा ने रामकथा सुनाई। प्रश्नों के उत्तर दिए और कथा सुनकर परम प्रसन्न होकर गरुड कागभुशुंडि को प्रणाम करके वैकुंठ गए। भुशुंडिजी ने रामकथा को विराम दिया। याज्ञवल्क्य महाराज के सामने भरद्वाजजी बैठे हैं वहां कथा पूरी हुई कि नहीं खबर नहीं लेकिन प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती बहती रहेगी तब तक ये कथा भी चल रही है। काश, हम उसे श्रवण कर पाए! कैलासपति महादेव ने पार्वती को कथा सुनाते-सुनाते कहा कि देवी, अब आप को कुछ सुनना है? बोले, महाराज, मैं कृत्यकृत्य हो गई फिर भी तृप्ति नहीं हो रही है! शिवजी ने कथा को विराम दिया। तुलसीजी कथा को विराम देते हुए आखिर में विश्व को एक संदेश देते हुए पूरे 'रामचरितमानस' का सार सत्य, प्रेम और करुणा में पेश करते हैं। पहले कहा, 'रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।' यह सत्य। क्योंकि रामनाम सत्य है। राम को गाओ। गा कौन सकता है? जो प्रेम करेगा वो ही गाएगा। तो राम को गाना यह प्रेम है। राम को सिमरना ये सत्य है। और 'संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।' निरंतर राम गुण गान सुनना। रामगुण गान निरंतर श्रवण करना ये भगवान की करुणा के बिना संभव नहीं है। इसलिए पूरा 'रामचरितमानस' का जो सार है वो सत्य, प्रेम, करुणा है।

तो शिव ने कथा को विराम दिया। भुशुंडि ने विराम दिया। बाबा याज्ञवल्क्यजी ने विराम दिया। और स्वयं तुलसी ने भी अपनी शरणागति की पीठ से कथा को विराम दिया। चारों परम आचार्यो की कृपा छाया में बैठकर इस ये व्यासपीठ से मैं नौ दिन के लिए मुखर हुआ। मेरी व्यासपीठ भी अब 'रामायण' को विराम देने में अग्रसर है तब मुझे लगता है, क्या कहूं? बहुत कुछ कह दिया, बहुत कुछ रह गया! फिर भी समय और सीमा में सब पूरा करना होता है। लेकिन मैं इतना ही कहूं कि इस पूरे आयोजन से मेरी व्यासपीठ बहुत प्रसन्न है। परमात्मा की कथा जहां भी होती है वहां कथा का एक बहुत बड़ा सुक्रित इकठ्ठा हो जाता है। तो 'मानस-पितृयज्ञ' का जो सुक्रित, जो पुन्यफल इकठ्ठा हुआ है उसको आईए, हम सब मिलकर दुनिया के समस्त पितृओं को अर्पण करे दें; तो ये सबसे बड़ा पितृतर्पण करते हुए आपके चरणों में ये कथा हम समर्पित करते हैं।

मानस-मुशायरा

तेरी खुश्बू का पता करती है।
मुझपे एहसान हवा करती है।
मुझको इस राह पे जाना ही नही,
जो मुझे तुझसे जुदा करती है।

- परवीन शाकीर

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटाएगा,
चरागों को अपना कोई मकां नहीं होता।

- वसीम बरेलवी

कुछ नहीं देते महोब्बत के सिवा।
कुछ नहीं लेते महोब्बत के सिवा।

- मजबूर साहब

मेरे बच्चों, दिल खोलकर तुम खर्च करो,
मैं अकेला ही कमाने के लिए काफ़ी हूं।

- राहत इन्दौरी

काबे से बूतकदे से कभी बज़्मे जाम से।
आवाज़ दे रहा हूं तुम्हें हर मकाम से।

पारमार्थिक कार्य यह रामकार्य है, परमात्मकार्य है

'शिशुविहार' में आयोजित नागरिक सम्मान समारोह में मोरारिबापू का प्रसंगोचित वक्तव्य

'शिशुविहार' संस्था द्वारा पूजनीय पुण्यश्लोक आदरणीय मानदादा की स्मृति में प्रति वर्ष नागरिक सम्मान के सात्त्विक कार्यक्रम का आयोजन होता है। मेरा सद्भाग्य है कि उस अवसर का साक्षी बनने का मुझे हमेशां लाभ मिलता है। सर्व प्रथम पूज्य मानदादा की कठोर और कोमल चेतना को मेरा प्रणाम। मंच पर बिराजित आदरणीय ज्योतिबापा भट्ट, उनको मेरा प्रणाम। इस संस्था के अध्यक्ष महोदय को मेरा प्रणाम। आदरणीय सुदर्शनभाई आयंगर किसी कारणवश आ नहीं पाये लेकिन उसने यह नागरिक सम्मान द्वारा हमारी वंदना का स्वीकार किया इसलिए उनका भी स्मरण करूं। पद्मश्री बहनजी भी आ नहीं पाई; उनको भी मेरा नमन। और कुष्ट रोगियों की इतनी बड़ी मात्रा में आत्मसात् हो कर सेवा करते हैं वह आदरणीया इन्दिराबहन, ज्योतिबहन और रमणीकभाई, जो हाज़िर है। वैसे तो कोई मंदिर में मूर्तिओं की हम पूजा करें, हार पहनायें, आरती करें, चरण में वस्त्र अर्पण करें, छोटी-बड़ी राशि भी हूंडी में डालें लेकिन कोई देव 'थेन्क यू' नहीं कहते कि आपने हमारे लिए इतना किया। वैसे यह कार्यक्रम यह पंच कर्मशील दैविक कार्य करनेवाले, जिनमें देवत्व है सेवा के रूप में; उनके लिए है। मैं हमेशां ऐसा आग्रह रखता हूं कि उनके पास कभी 'थेन्क यू' कहलाने के लिए हमारी ये प्रवृत्ति नहीं है। हमारी वंदना का उन्हों ने स्वीकार किया यही बहुत बड़ी बात है।

गांधी बापू के विचार से या तो दुनिया में कोई भी महानुभाव जो जगत के लिए जीये हैं; 'सर्वभूत हिताय। सर्वभूत सुखाय। सर्वभूत प्रीताय।' जिसने अपना समग्र जीवन समर्पित किया हो ऐसी कोई भी व्यक्ति कोई भी क्षेत्र पसंद कर उसमें जब सेवा करती है तब वह हमेशां पारमार्थिक कार्य करती है। मैं शायद न भूलता हूं तो अभी उत्तरकाशी की कथा में एक बात कहता था कि जो गुजरात में रहे उनको हम गुजराती कहते हैं। जो कश्मीर में रहते हैं वह हमें कहे कि हम कश्मीरी है। राजस्थान के वतनी राजस्थानी कहलाये। तमिलनाडु में रहते हो वह स्वाभाविक कहे कि हम मद्रासी या तो तमिल हैं। परमार्थी कौन? जो परमार्थ के मुल्क में रहते हो उनका नाम परमार्थी है। यह सब सुंदर पृथ्वी के, एशिया खंड के, हमारे भारत वर्ष के, हमारे गुजरात में विधविध स्थानों में रहते हैं वहां इतनी बड़ी सेवा करते हैं, ये सब मेरी दृष्टि में परमार्थी है। क्योंकि वे परमार्थ मुल्क के निवासी है। ऐसे सेवाक्षेत्र में रहते आदरणीयों का एड्रेस ही परमार्थ है। आज जब नब्बे प्रतिशत समाज स्वार्थ के मुल्क में रहते हैं, आज समाज पर कलि का इतना बड़ा प्रभाव है तब इनमें दशांश वर्ग ऐसा है जो परमार्थ निवासी है। स्वार्थी तो हम सब है।

ओशो की एक छोटी-सी विनोदी बात मैंने पढ़ी थी। उन्हों ने तो ऐसा कहा कि यह ईसाई कथा है। ईसाई धर्मगुरु कहते होंगे। लेकिन मुझे यह ईसाई है, यह इस्लाम है, यह बौद्ध है ऐसा कहना पसंद नहीं; अनिवार्यतया बोलना पड़े कि यह ये है तो बोलूं लेकिन मुझे पसंद नहीं। मैं सतत खोज में हूं कि मैं कैसा हूं? और जब कहीं से भी उत्तर न मिले तब मैं नरसिंह मेहता को पूछूं। और वह मुझे कहे कि कह दो-

एवा रे अमे एवा रे,
तमे कहो छो वळी तेवा रे...

इस दुनिया में जिनके पास नमक है और जिनके पास मरहम यानी मलम है ऐसे सभी लोग ज़ख़म को ही खोजते हैं। उनकी यात्रा केवल ज़ख़म तक ही है। नमक भी ज़ख़म खोजता है कि कब लगायें? और मरहम भी ज़ख़म ही खोजता है कि कब उसे तंदुरस्त करें। मुझे लगता है कि परमार्थ प्रदेश के ये निवासी जो है वे मरहम लेकर निकले हैं। अपने-अपने क्षेत्र में जहां-जहां पीड़ा है, जहां-जहां कुछ दुःख है उसको खोजते हैं। यह ये है, ऐसा कहना भी मुझे पसंद नहीं है।

ओशो ने कहा, ईसाई धर्म में ये घटना हुई। जो हो, ओशो जाने। लेकिन उसमें ऐसा है कि एक बहन का पति मर गया। वो बहन पति की क़ब्र पर- मज़ार पर एक तकती लगाना चाहती है। अच्छे शिल्पी को मिलकर उसने कहा कि मेरे पति की क़ब्र पर एक तकती लगानी है तो आप बना दो। शिल्पी ने कहा, एक सप्ताह में बना दूं। मुझे जो लिखना है वो दो। तो वह बहन ने लिखकर दिया कि 'Live in peace.' ऐसा लिख दो। 'शांति से जीना।' ऐसा लिख दो। शिल्पी ने बहुत सुंदर बोर्डर बनाकर संगेमरमर की तकती में लिख दिया। वह बहन तकती लेने गई उसके एक दिन पहले अपने पति ने जो वसियत तैयार की थी वह देखी कि जरा देखूं तो सही कि पति ने किसके लिए क्या रखा है? वसियत में लिखा था कि इतने पैसे इनके लिए; यह जंगम मिल्कत इनके लिए; यह स्थावर इनके लिए। उनकी पत्नी के लिए कुछ भी नहीं लिखा था! तो वह बहन को दुःख हुआ। दुःख होना स्वाभाविक है। वह सीधी शिल्पकार के पास गई। शिल्पकार ने कहा कि आपकी तकती तैयार है। बहन ने कहा, अब उसमें थोड़ा सुधार करो। अब ऐसा लिखो कि 'Live in peace until I come.' मैं आती हूं! और मैं आऊं तब तक तू शांति का अनुभव कर सकेगा; बाकी मैं आऊं तब देख लूंगी! ऐसे स्वार्थ के मुल्क में हम जी रहे हैं! ऐसे समय में कोई-कोई लोग प्रसिद्धि से दूर रहकर अपने क्षेत्र में कितना बड़ा कार्य कर रहे हैं! मुझे तो जब

परिचय होता है और मैं वहां से निकलूं तो सामने से वहां जाता हूं। कभी मुझे कहा जाता है कि यहां कितना बड़ा काम होता है!

आप सब बैठे हैं इसलिए कहने का कोई कारण नहीं। लेकिन यह एक बहुत बड़ा काम है। और इसमें भी ऐसे पारमार्थिक काम के लिए कुछ करना। वैसे 'परमार्थ' तो परमात्मावाचक शब्द है। राम को परमार्थ का विग्रह माना जाता है। इसलिए यह सब रामकार्य है। यह परमात्मा का कार्य है। ऐसे कार्य में आप सब है। जब संभव हो तब कभी ऐसी संस्था में जा पाऊं। लेकिन जब जानकारी मिले तब तलगाजरडा बहुत ही प्रसन्न होता है। आपको होगा कि समाज ने उसकी नोंध ली, और क्या खुशी? लेकिन आपको विशेष खुशी यह भी होती होगी कि मानदादा की खुशी में यह अवोर्ड दिया जाता है। एक फ़कीर जैसा पुण्यश्लोक आदमी इस नगर में बसता था, जिनको हम सब मानदादा कहते थे। हाफ पेन्ट पहनकर, खादी का एक कमीज़ पहनकर और उनके पीछे 'सबको सन्मति दे भगवान' या ऐसा कुछ लिखा हो और निर्भीक फ़कीर घूमता हो। ऐसे मानदादा की पुण्यस्मृति में यह अवोर्ड दिया जाता है वह बहुत बड़ी बात है। मोरारि बापू के हाथ से दिया जाता है वो मेरे लिए आनंद का विषय है।

सभी के हाथ तो ईश्वर है, ऐसा श्रुति कहती है, वेद कहता है। उसमें किसी का भी हाथ ईश्वर है। यह बात भारत का ऋषि ही कह सकता है अथवा तो जिसको हम अपौरुषेय कहते हैं ऐसे वेद का कोई ऋषि ही कह सकता है कि 'अयं मे हस्तो भगवान। अयं मे भगवत्तरः। अयं मे विश्वभेषजं।' मेरे हाथ परमात्मा है। मेरे हाथ परमात्मा से भी कुछ ज्यादा है। मेरे हाथ से विश्व की बीमारियों का नाश करने के लिए मैं औषधि हूं। वहां तक ऋषि कहते हैं। इसलिए अपने हाथ भी ईश्वर ही है। मेरे हाथ भी ईश्वर है। आपके हाथ भी ईश्वर है। सम्मान स्वीकार करनेवाले के हाथ भी ईश्वर है। लेकिन अब क्या है कि हमें हाथ थोड़ा देखना तो पड़े कि इसमें ईश्वरत्व कितना है? क्योंकि हाथ में ईश्वरत्व दब चुका है और ऐश्वर्य ज्यादा आ गया है। और ऐश्वर्य धन का हो, सम्मान का हो, पद का हो, सत्ता का हो, प्रतिष्ठा का हो। आदमी चाहे वो कर सके इतना सामर्थ्य मिले उसके नीचे कहीं ईश्वरत्व दब जाता है। और उसको फिर हमें हाथ धोकर खोलना पड़ता है। ये हमारे सभी सत्कर्मों में मुंह धो लो, स्नान कर लो। अथवा तो ये कुछ न किया हो तो भी तुम पूजा में बैठो तब ब्राह्मण कहे, 'हस्ते जलमादाय।' हाथ में जल लेकर हस्त प्रक्षालन करो। फिर हाथ में जल लेते हैं वो किस काम के लिए? इसलिए कि आपने ईश्वर पर एक दूसरा जो पोत चढ़ाया है उसको इतने समय तक तो धो डालो और आप ईश्वर को प्रकट करो।

तो सभी के हाथ तो ईश्वर है। मैंने यहां भी कहा होगा। कई बार कहा होगा। पुनरुक्ति करता हूं। और कुछ वस्तु की पुनरुक्ति भी पसंद आती है। याद रहे, वासुदेव मेहता, गुजराती भाषा के पत्रकारित्व में बहुत बड़ा नाम। उनके हाथों से राजकोट में जब कोई महानुभाव का सम्मान होता था तब कहा गया कि वासुदेवभाई के शुभ हाथों से यह सम्मान दिया जाता है। तो वह जब बोलने के लिए खड़े हुए तब उन्हों ने कहा कि शुभ हाथों से सम्मान दिया जाय उसके बजाय किसी के शुद्ध हाथों से दिया गया होता तो अच्छा होता। और आज शुद्ध हाथ की परिवार को, पड़ोशियों को, राज्य को, राष्ट्र को और यह रमणीय पृथ्वी को बहुत ही ज़रूरत है। मुझे ऐसा लगता है कि भगवान कृष्ण ने 'भगवद्गीता' में ऐसा

कहा कि जब-जब ऐसा होगा तब 'संभवामि युगेयुगे।' कृष्ण ही युगेयुगे जन्म ले इतना पर्याप्त नहीं। कलमों को भी युगेयुगे जन्म लेना पड़ेगा। लेखिनीओं ने भी जागना होगा। कंठ ने भी; कलम ने भी समय-समय पर प्रकट होना पड़ेगा।

यह सभी ने जागना होगा और यह सब प्रकट करना होगा। और इसलिए ऐसी संस्थाएं, ऐसी सगर्भ संस्थाएं जो इसमें से बहुत कुछ प्रकट कर सकती है; ऐसी संस्थाओं को एक वर्ष की समयावधि में मानबापा की संस्था के ये अनुभवी लोग, ये बुज़ुर्ग लोग खोजकर पसंद करते हैं और प्रतिवर्ष हम उनकी वंदना करते हैं। उसमें मैं हाज़िर रहता हूं और रह सकता हूं क्योंकि संस्था के अग्रणी लोग मुझे सरलता कर देते हैं कि जो दिवस आप समय दो वह हमें कबूल है। वैसे तो ग्यारह तारीख मैंने दी थी लेकिन अंत समय पर मेरे कार्यक्रम में मुझे थोड़ा परिवर्तन करना पड़ा। पांच-छः दिन पहले ही मैंने फोन में बताया कि बारह तारीख को रख सकते हैं? इन बुज़ुर्गों ने कहा, आप जो तारीख दो वो चलेगी। ऐसी संस्थाएं मिलनी मुश्किल है। वरना लोग कहे, आप तो 'रामायण' गाते हैं, 'प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई।' अरे भाई! इतनी छोटी-सी बात और मुझे प्राण दे देना? मुझे कितनी कथा करनी है और मेरे प्राण की मुझे थोड़ी ज़रूरत है। तेरी किसी को ज़रूरत नहीं! मुझे बहुत सुनना पडता है कि बापू ने कहा था और फिर आये नहीं! फिर कहां-कहां खुलासा करने हम जाएं? मैं ऐसे कार्यक्रम में समय दूं और फिर कई लोगों को पता चले तो कार्यक्रम के लिए बीच में कूद पड़े! बापू, आप आओ। मैं इतना कहूं कि मेरे सुनिश्चित कार्यक्रम है इसलिए आपके यहां आ सकूंगा तो

आऊंगा। आप घोषणा मत करना। फिर भी घोषणा करे और मैं न पहुंच पाऊं तो मुझे कुछ स्पष्टता करने की नौबत आये! तो वो लोग कहे, बापू ने कहा था लेकिन आये नहीं! उसका कितना गलत अर्थ होता है!

आप सब मुझे सरलता कर देते हैं उसका मुझे बहुत आनंद है। संस्था में हमारा बुधाभाई भी दादा के समय से जुड़ा हुआ है। और अब भावनगर को खुश खबर दूं कि २०20 के अंत में सप्टेम्बर या ऐसा कुछ मास है उसमें भावनगर को, यह बुधाभाई को मैंने कथा दी है। यह राजकीय बुजुर्ग जो है वह पांच साल तक अपने-अपने मत विस्तार में जाए या न जाए! उनकी व्यस्तता के कारण, उनकी अन्य प्रवृत्ति के कारण जा सके या न जा सके! बाकी उन्हों ने कार्य तो यही करना होता है। लेकिन मुझे भी ऐसा होता है कि दस-पंद्रह साल हो जाय तो मेरे मत विस्तार में जरा चक्कर लगा दूं। मेरा कोई मत विस्तार नहीं है। मुझे तो मति के साथ काम लेना है। तो ये बुधाभाई पीछे पड़े थे। और मुझे मालूम है, मैंने कहा है, बुधाभाई को भी याद है कि जब दक्षिणामूर्ति का कार्यक्रम था तब मैंने कहा था कि अब जब कथा हो तब भगवान करे जो राशि इकठ्ठी हो वो भावनगर की तमाम पारमार्थिक संस्थाओं को बांटी जाय। वो कथा में तो नखशिख बुधाभाई ही है। लेकिन भगवान करे, हम एक सन्मानित राशि भी इकठ्ठी करें। और भावनगर में कितनी सद्प्रवृत्ति होती है! कई छोटी-छोटी संस्थाएं; यह दादा की संस्था से लेकर कहीं संगीत की, कहीं नृत्य की, कहीं शिक्षण की, कहीं विज्ञान की प्रवृत्ति होती रहती है। बहुत कुछ हो रहा है।

भावनगर तो गज़ब है साहब! भावनगर यानी उसकी एक विशेष महिमा है। तो वह कथा में जो राशि इकठ्ठी होगी ये सब संस्थाओं की सेवा में हम उपयोग में लेंगे। ऐसे भावनगर के आंगन में दादा की संस्था और उसमें प्रतिवर्ष मैं आ सकता हूं उसका मुझे आनंद है। आप मुझे कहते रहना। मैं आता रहूंगा, आप जब भी कहोगे। अगर मेरी व्यस्तता हो और कोई कारणवश मैं न आ सकूं तो भी मेरा हृदय यह पुण्यश्लोक मानदादा के कार्यों के साथ जुड़ा हुआ है। मैं राज़ी होता हूं।

पुनः एक बार जिनकी वंदना की उनके सेवाकार्यों को मेरा प्रणाम। आप सबको भी मेरा प्रणाम। और मैं क्षमा चाहता हूं कि अभी रास्ते में मुझे तीन कार्यक्रम है तो जाना पड़ेगा। उत्तरकाशी से निकला तब से रास्ते में कार्यक्रम करते-करते ऐसे ही हूं! इसलिए अगर अविवेक न हो तो मैं जा सकूं? आप सब ऐसे ही सभा की मर्यादा बनाये रखना ऐसी मेरी आप सभी को प्रार्थना है।

अंत में शंकराचार्य भगवान की एक बात कहकर मैं पूर्ण करूं। जगद्गुरु आदि शंकर ने ऐसा कहा है कि यह जगत विष का वृक्ष है। श्लोक मुझे याद नहीं है। आप खोज लेना। लेकिन जगद्गुरु के शब्द है कि यह जगत विष का वृक्ष है; उस पर अमृत के दो फल लगते हैं। अब विष की वेल को अमृत के फल लगे ये तो बहुत आश्चर्य की बात लगती है। हमारे तुलसी कहते हैं-

नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं।

विष की वेल को कभी अमृत के फल नहीं लगते। लोग ऐसा कहने लगे कि कैकेई जैसी विष की वेल पर यह भरतरूपी अमृत का फल नहीं लगता। ऐसा एक टुकड़ा है। जगद्गुरु आदि शंकर कहते हैं, यह विषरूपी वृक्ष जो जगत है उसमें दो अमृत के फल है, 'काव्यानुरसास्वादन।', किसी काव्य का रसास्वाद करना यह फल है। और ऐसे सेवा करते सज्जनों के साथ आधा घंटा या एक घंटा बैठने मिले यह अमृत का फल है।

(शिशुविहार, भावनगर (गुजरात) में नागरिक सम्मान समारोह-२०१९ में प्रस्तुत वक्तव्य: दिनांक : १२-११-२०१९)

चार प्रकार के पिता होते हैं। एक, रजोगुणप्रधान पिता जो प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति करता है। रजोगुणी बाप सेवा के नाम पर सिमरन भूल जाता है। दूसरा, कोई-कोई बाप तमोगुणी होते हैं जो परिवार पर गुस्सा ही करते हैं। पत्नी पर, माँ-बाप, पुत्र-पुत्रवधू, बच्चें सब पर गुस्सा निकालता है। तीसरा, कोई-कोई पिता सत्त्वगुणी होते है। ऐसा बाप जो थोड़ा भजन करता हो, थोड़ा सत्कर्म करता हो, आंगन में आये साधु-संत, अतिथि का स्वागत करता हो; पुण्यकर्म करता हो। चौथा, कोई-कोई बाप गुणातीत होता है। आप उसका निरीक्षण करो तो लगे कि उसमें तमोगुण नहीं दिखता; रजोगुण नहीं दिखता; नदी की तरह बहता है।

–मोरारि बापू

॥ जय सीयाराम ॥